"जैनेन्द्र के उपन्यास 'त्यागपत्र' में नारी जीवन की समस्याएँ"

(एम० फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध - प्रबंध)

शोध-निर्देशक

डा० एस० पी० सुधेश

शोधकर्त्ता

चन्द्रशेखर राम

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा संस्थान

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय

नई दिल्ली - ११० ०६७

१९९७

जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI - 110067

भारतीय भाषा केन्द्र,
भाषा संस्थान

नई दिल्ली-110067

दिनांक 16-7-1997

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री चन्द्रशेखर राम द्वारा प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध 'जैनेन्द्र के उपन्यास 'त्यागपत्र' में नारी-जीवन की समस्याएँ' में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा किसी अन्य विश्वविद्यालय में इसके पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है।

यह लघु शोध-प्रबन्ध श्री चन्द्रशेखर राम की मौलिक कृति है।

(डा० एस. पी. सुधेश)
शोध-निर्देशक
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

(प्रो. मैनेजर पाण्डेय)
अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

GRAM : JAYENU TEL. : 667676, 667557 TELEX : 031-73167 JNU IN

समर्पण

चाचा और चाची को .....

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
पीठिका	क - ख
पहला अध्याय	1 - 15
जैनेन्द्र के उपन्यासों का सामान्य परिचय	
दूसरा अध्याय	16 - 44
`त्यागपत्र` में नारी मुक्ति का प्रश्न	
1 - नारी मुक्ति की अवधारणा	
2 - नारी मुक्ति के विविध स्वरूप	
(क) राजनीतिक मुक्ति की अवधारणा	
(ख) आर्थिक मुक्ति की अवधारणा	
(ग) सामाजिक मुक्ति की अवधारणा	
(घ) पारिवारिक मुक्ति की अवधारणा	
(ङ) नैतिक मुक्ति की अवधारणा	
(च) धार्मिक एवं सांस्कृतिक मुक्ति की अवधारणा	
(छ) कानूनी मुक्ति की अवधारणा	
(ज) जैवकीय मुक्ति की अवधारणा	
तीसरा अध्याय	45 - 55
`त्यागपत्र` में पारिवारिक जीवन और नारी	
1 - पति पत्नी का द्वन्द्व	
2 - सन्तान और माता पिता के बीच द्वन्द्व	

चौथा अध्याय 56 - 77

`त्यागपत्र` में सामाजिक जीवन और नारी

1 - सामाजिक रूढ़ियाँ और नारी
2 - सामाजिक शोषण और नारी
3 - नारी जागरण

पाँचवाँ अध्याय 78 - 93

`त्यागपत्र` में मुख्य नारी चरित्र और उनका मनोविज्ञान

छठा अध्याय 94 - 97

उपसंहार

परिशिष्ट 98 - 100

1 - आधार ग्रन्थ
2 - सहायक ग्रन्थ

पीठिका

निजी कारणों से भी कोई रचना अच्छी लग सकती है, लेकिन कोई रचना बहस का मुद्दा बन जाए, इसके लिए सिर्फ उसका अच्छा लगना नाकाफी ही होगा । एम. फिल्. शोध-प्रबन्ध के लिए रचनाओं के 'ढेर' में से 'त्यागपत्र' उपन्यास का चयन करते समय मेरे पास तो विशेष तर्क नहीं था । मुझे पहली बार यह रचना अच्छी लगी थी । उपन्यास पर मैं कार्य करना चाहता था । साथ ही मेरी समझ जे. एन. यू. में निवास के दौरान विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक बहसों और विमर्शों से भी प्रभावित होती रही । इसलिए 'त्यागपत्र' में नारी मुक्ति के प्रश्न पर शोध करना मेरे लिए इस बहस में हिस्सा लेना ही था । इसलिए मैंने इस विषय पर कार्य करने की ठानी ।

प्रथम अध्याय में जैनेन्द्र के उपन्यासों का सामान्य परिचय प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है । साथ ही उन उपन्यासों की प्रमुख समस्या को भी रेखांकित करने का प्रयास किया गया है । इससे विवाह और प्रेम के संबंध में जैनेन्द्र के दृष्टिकोण का परिचय भी मिलता है ।

दूसरे अध्याय में मुख्य रूप से नारी मुक्ति के प्रश्न को उठाया गया है, जिसमें नारी मुक्ति की अवधारणा और उसके विविध स्वरूपों के परिप्रेक्ष्य में नारी स्वाधीनता को जाँचने-परखने का प्रयत्न किया गया है । इसके अतिरिक्त इस मुक्ति अवधारणा को 'त्यागपत्र' से जोड़कर उसके दो प्रमुख रूपों व्यक्तिगत मुक्ति और सामाजिक मुक्ति के अन्तर्गत नारी पात्रों, खासकर मृणाल की स्वाधीनता का विवेचन किया गया है ।

तीसरे अध्याय में आलोच्य उपन्यास के विभिन्न पात्रों के जीवन में द्वन्द्व को अनेक रूपों में जाँचने -परखने की कोशिश की गयी है । इसमें मुख्य रूप से आज की बदलती मानसिकता के चलते पति-पत्नी के बीच द्वन्द्व और सन्तान तथा माता-पिता के बीच उभरने वाले द्वन्द्व के कारण और परिणाम दोनों के बारीक सूत्रों का उद्घाटन किया गया है ।

चौथे अध्याय में नारी शोषण को प्राचीन और आधुनिक दोनों दृष्टियों से देखा गया है। साथ ही आज के परिप्रेक्ष्य में नारी स्वतन्त्रता का दावा करने वाले दुरंगे राजनीतिज्ञों की कुटिल मानसिकता को भी व्यक्त किया गया है। यह मुख्य रूप से सामाजिक रूढ़ियों द्वारा और पुरुषवादी व्यवस्था द्वारा होने वाले नारी शोषण का एक अलग खाका प्रस्तुत करता है। साथ ही नारी जागरण के स्वरूप का वर्णन किया गया है।

पाँचवें अध्याय में जैनेन्द्र के नारी पात्र और उनके मनोविज्ञान का चित्रण किया गया है। जैनेन्द्र ने नारी पात्रों के व्यक्तित्व का विकास भी दिखाया है, साथ ही यथार्थ और मनोवैज्ञानिकता के सम्मिश्रण से परिस्थितियों में विभिन्न मोड़ उनके लेखन शैली की विशेषता रही है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध के आद्यन्त निर्देशन का कार्य डा० एस. पी. सुधेश ने किया, जिनके सतत् मार्गदर्शन और प्रोत्साहन ने इस लघु शोध-प्रबन्ध की मौलिकता में महत्वपूर्ण योगदान दिया। शब्दों द्वारा डा० सुधेश के प्रति आभार व्यक्त करना महज औपचारिकता होगी परन्तु प्रचलित रीति के अनुसार मैं उनके प्रति दिल से आभार व्यक्त करता हूँ।

अपने सभी सहयोगियों का मैं कृतज्ञता के साथ स्मरण करता हूँ। विशेष कर अपने चाचा श्री चन्द्रभान प्रसाद, श्री पतिराम के प्रति आभार प्रकट करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। उनकी स्नेहमयी प्रेरणा एवं सतत् मार्गदर्शन से ही मैं इस दुरूह कार्य का सफलतापूर्वक सम्पादन कर सका।

मैं अपने सभी मित्रों शिवकुमार सिंह, नामदेव, कृष्णाकान्त चन्द्रा, कुमारी पूनम, बजरंग तिवारी, संजय गौतम, स्वतन्त्रकुमार जैन, विजयपाल, मीना गौतम, बन्दना, अर्जुनकुमार आदि का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने अपनी तमाम शैक्षणिक व्यस्तताओं के बावजूद मेरे इस कार्य में विभिन्न रूपों में सहयोग दिया तथा शोध-प्रबन्ध लेखन के लिए प्रेरित करते रहे।

- चन्द्रशेखर राम

प्रथम अध्याय

जैनेन्द्र के उपन्यासों का सामान्य परिचय

जैनेन्द्र के उपन्यासों का सामान्य परिचय

प्रेमचन्द के साथ और उनके बाद उपन्यास का नया स्वरूप और कथा-संरचना की नई ज़मीन देने का काम जैनेन्द्र ने किया । उनके उपन्यास हमें एकाएक मानव-मन की सर्वथा भिन्न भूमि पर उतारते हैं । मानसिक ऊहापोहों, आन्तरिक उलझनों, यौनगत विमर्शों और नैतिकता की अवधारणाओं से नए ढंग से परिचय कराते हुए जैनेन्द्र के उपन्यास अविस्मरणीय हैं, जिनका परिचय इस प्रकार है :

1. `परख`

उनका पहला उपन्यास सन् 1929 ई० में प्रकाशित मनोवैज्ञानिक ढंग का सशक्त उपन्यास `परख` है । इस उपन्यास की कथा दो धाराओं में चलती है । पहली धारा में `सत्यधन` और `कट्टो` के बीच, दूसरी धारा `बिहारी` और `कट्टो` के बीच है ।

उपन्यास की कथावस्तु इस तरह से है । सत्यधन शहर से वकालत पास करके अपने गाँव की पैतृक भूमि के बल पर अपना जीवन-निर्वाह करने लगता है । वहीं पर एक बाल-विधवा कट्टो से उसका परिचय होता है और वह उसे शिक्षित करता है । इसी क्रिया-व्यापार के दरम्यान दोनों में घनिष्ठता इस हद तक बढ़ जाती है कि दोनों एक दूसरे में आकर्षण अनुभव करने लगते हैं । कट्टो सत्यधन के प्रेम में इतना विह्वल हो जाती है कि अपने को विवाहिता अनुभव करने लगती है । यहाँ तक कि वह एक दिन मेले से सिंदूर की डिबिया और शृंगार की अन्य सामग्री भी खरीद लाती है । लेकिन सत्यधन का विवाह बिहारी की बहिन गरिमा से हो जाता है । कट्टो मेले से खरीदी हुई वस्तु को सत्यधन

और गरिमा को उपहार स्वरूप प्रदान कर दोनों के मार्ग से हट जाती है। कथा के दूसरे भाग में कट्टो और बिहारी प्रमुख पात्र हैं। कट्टो सत्यधन के बहुत कहने और समझाने के बाद `बिहारी` से विवाह कर लेती है। बिहारी के पिता अपनी सम्पत्ति बिहारी के नाम करके स्वर्गवासी हो जाते हैं। लेकिन उसी दिन से सत्यधन इस मकान को छोड़कर एक छोटे से किराये के मकान में रहने लगता है, लेकिन कट्टो सत्यधन को घर वापस आने के लिए आग्रह करती है। वह उसके आग्रह को ठुकरा देता है और कट्टो सहायता के रूप में रुपये भी देती है, जिसके परिणामस्वरूप सत्यधन का मन कट्टो के प्रति कचोटने लगता है। बिहारी और कट्टो समझौता कर दोनों अलग-अलग रास्ता अपना लेते हैं। बिहारी खेती पर आश्रित हो जाता है और कट्टो बच्चों को पढ़ाकर अपना जीवन-निर्वाह करती है।

इस उपन्यास में मुख्य रूप से विधवा विवाह की समस्या उठायी गयी है, साथ ही आत्मिक प्रेम का एक अलग ढांचा तैयार किया गया है, जिसमें स्वार्थ और काम भाव के लिए उतना स्थान नहीं बन सका जितना उनके अन्य उपन्यासों में है। इसमें प्रेम की त्रिकोणात्मक स्थिति नहीं बनती। यद्यपि एक एक विधवा स्त्री कट्टो के प्रति दो पुरुष सत्यधन और बिहारी आकृष्ट होते हैं, फिर भी इनमें से सत्यधन का आकर्षण धन और प्रतिष्ठा के लिए होने के कारण उसका प्रेम अधिक समय तक नहीं चल सका। कट्टो के प्रति बिहारी का आत्मिक प्रेम है। अत: इसके लिए प्रेम धन, प्रतिष्ठा और सांसारिक मूल्यों से बड़ा है। इसके अलावा इसमें जैनेन्द्र ने बुद्धि और अन्तस् के संघर्ष के माध्यम से कुछ बातें कहनी चाही हैं। इसमें सत्यधन बुद्धि का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि बिहारी बुद्धि और अन्तस् का समन्वित रूप है। परन्तु सबसे बढ़कर अन्तस् की पूर्ण प्रतिमा है कट्टो, जिसका व्यक्तित्व उपन्यास में उभर कर सबसे अधिक आया है। इस त्रिकोणीय संघर्ष में कट्टो को महिमामण्डित करके जैनेन्द्र ने अन्तत: हृदय के जीत की बात कही है।

2. सुनीता

सन् 1935 ई० में प्रकाशित जैनेन्द्र जी का दूसरा बहुचर्चित और विवादास्पद उपन्यास `सुनीता` है ।यह उपन्यास अन्य उपन्यासों से भिन्न भी है । भिन्नता इस अर्थ में है कि पहली बार मानव-मन की कटु एवं तनाव-पूर्ण दशा का मनोविश्लेषण बहुत मार्मिक ढंग से हुआ है । इस उपन्यास का नायक `हरिप्रसन्न` है, जिसके व्यक्तित्व के चारों ओर कथा घूमती रहती है । हरिप्रसन्न एक योग्य एवं प्रतिभाशाली राष्ट्रीय कार्यकर्ता तो है, फिर भी उसके जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है । इसलिए उसका मित्र `श्रीकांत` उसे उसके जीवन को सही रास्ते पर लाने का भरपूर प्रयत्न करता है । वे दोनों कालेज के सहपाठी थे । श्रीकांत अक्सर अपनी पत्नी सुनीता से अपने मित्र की चर्चा करता रहता है । श्रीकांत के मन में हरिप्रसन्न के प्रति छिपी अथाह वेदना का अनुभव उसकी पत्नी सुनीता को होता है । एक दिन श्रीकांत के आग्रह पर हरिप्रसन्न उसके घर आकर रहने लगता है । श्रीकांत अपने मित्र को हर क़ीमत पर सामान्य बनाना चाहता है । लेकिन थोड़े समय बाद श्रीकांत अपनी पत्नी सुनीता को हरिप्रसन्न की हर इच्छा की पूर्ति का दायित्व सौंप कर लाहौर प्रस्थान कर जाता है । एक दिन आधी रात को हरिप्रसन्न सुनीता को अपने दल वालों के परिचय हेतु ले जाता है तथा उक्त स्थान मिलने से पूर्व लाल रोशनी से खतरे का आभास पाकर वह सुनसान झाड़ियों में छिप जाता है । इस सुनसान और एकांत वातावरण में हरिप्रसन्न सुनीता के समक्ष अपने वासनात्मक प्रेम का उद्घाटन करता है, जहाँ सुनीता उसकी इच्छा पूर्ति के लिए अपने आप को समर्पित कर देती है । इसके बाद सुनीता को हरिप्रसन्न उसके घर छोड़ कर उसकी गृहस्थी से चला जाता है । श्रीकांत के लाहौर से लौटने के बाद सुनीता इन सारी घटनाओं का अपने पति से ज़िक्र करती है, लेकिन श्रीकांत के मन में पत्नी के प्रति पूर्व प्रेम बना रहता है, बल्कि और भी गहरा प्रेम हो जाता है । इस घटना को सुनकर सुनीता का पति खुश होता है कि उसने हरिप्रसन्न का उपचार कर समाज का भला किया ।

इस उपन्यास में जैनेन्द्र ने प्रेम की स्थिति को आधुनिक प्रसंग में देखने की कोशिश की है, जिसमें स्त्री-पुरुष का नवजागरण महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । इसमें जैनेन्द्र ने नारी के उस रूप को प्रतिष्ठित करना चाहा है जो एक साथ शक्तिशालिनी, सौन्दर्यमयी, मायामूर्ति और पवित्र भी है । जैनेन्द्र का यह विचार यहां खुलकर सामने आया है कि किसी को पाने के लिए अपने को देना सबसे ज़्यादा आवश्यक है और वह तब संभव हो सकता है जबकि `स्व` और `पर` के भेद को मिटा दिया जाए । यही सन्देश श्रीकांत के माध्यम से उपन्यासकार ने देना चाहा है । उसे अपनी पत्नी सुनीता का प्यार तब तक नहीं मिल पाता, जब तक कि वह सुनीता के पूर्ण व्यक्तित्व को स्वीकृति नहीं देता है । उपन्यास में श्रीकांत के चरित्र में दोनों बातें दिखाई पड़ती हैं । वह पहले तो रूढ़िवादी व्यक्ति लगता है परन्तु समय के साथ-साथ वह भी अपनी मानसिक संकीर्णता का परित्याग कर एक नवीन और उन्मुक्त विचार वाला व्यक्ति बनता है जो जैनेन्द्र की अपनी मान्यता है । यद्यपि श्रीकांत का यहाँ जो अंतिम रूप दृष्टिगत होता है, वैसे पुरुष व्यवहार में कम ही दिखाई देता है । फिर भी जैनेन्द्र के इस आदर्श मनोविज्ञान की ओर आज की एक पीढ़ी अग्रसर दिखाई दे रही है ।

3 - `त्यागपत्र`

सन् 1937 ई० में प्रकाशित जैनेन्द्र जी का सशक्त सामाजिक, आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया तीसरा उपन्यास `त्यागपत्र` है । इस उपन्यास के प्रमुख पात्र प्रमोद और उसकी बुआ मृणाल हैं । इसमें मृणाल के जीवन की करुण झांकी प्रस्तुत की गई है । मध्यवर्गीय परिवार की मृणाल पिता की मृत्यु के बाद अपने बड़े भाई और उसकी पत्नी की देखभाल में रहते हुए विद्यालय में पढ़ती है । स्कूल में पढ़ते हुए उसका अपनी सहेली (शीला) के भाई से प्रेम हो जाता है, लेकिन यह प्रेम सफल नहीं हो पाता । मृणाल अपने भतीजे प्रमोद से घनिष्ठ रूप से

जुड़ी हुई है । उसके प्रति मृणाल के मन में अथाह स्नेह भी है । अपने मन की सारी बातें मृणाल अपने भतीजे प्रमोद से बताती है और प्रमोद भी अपनी बुआ मृणाल से विशेष आत्मीय रूप से जुड़ा है । प्रमोद मृणाल से सिर्फ चार-पाँच वर्ष छोटा है । मृणाल का विवाह एक अधेड़ व्यक्ति से कर दिया जाता है, जिसके लिये वह तैयार नहीं थी । पति-पत्नी में अनुकूलता नहीं स्थापित हो पाती है । अत: उसका पति उसे लांक्षित करने लगता है, जिसके कारण वह पति का घर छोड़ कर और अलग मकान में रहने लगती है । कुछ समय बाद वह अन्य व्यक्ति के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर उसके साथ निर्वाह करने लगती है । उसी दौरान वह एक बच्ची की माँ बन जाती है । किन्तु वह व्यक्ति भी उसे छोड़कर चला जाता है ।इधर उत्पन्न बच्ची की मृत्यु हो जाती है । फिर मृणाल किसी दूसरे परिवार में रहकर बच्चों को पढ़ाकर अपना जीवन निर्वाह करने लगती है लेकिन वहाँ से भी उसे जाना पड़ जाता है । आगे दर-दर भटकने और उदर पोषण के लिए संघर्ष करते हुए मरना ही उसके जीवन का अंतिम लक्ष्य बन जाता है और वहीं उपन्यास का अंत होता है । प्रमोद को अपनी बुआ की मृत्यु का समाचार सुनकर आत्मग्लानि होती है और अपने समस्त जीवन को धिक्कारते हुए जज के उच्च पद से त्यागपत्र देकर विरक्त जीवन व्यतीत करने लगता है ।

'त्यागपत्र' की मुख्य समस्या नारी स्वातन्त्र्य की है । इसमें एक स्त्री को इस हद तक स्वतन्त्र दिखाया गया है कि व्यावहारिक जीवन ज्यादा सच नहीं लगता, परन्तु इस सम्पूर्ण घटनाक्रम में जैनेन्द्र जी ने परिस्थितियों का निर्माण किया है । उनके बीच पिसने वाली नारी का उस ओर कदम बढ़ाया जाना संभव ही नहीं, बल्कि आवश्यक सा लगता है । यद्यपि उपन्यासकार ने नारी को अन्तत: स्वतन्त्र करने की पूरी कोशिश की है परन्तु इसमें उसने आर्थिक अभावग्रस्तता और सामाजिक बन्धनों का जाल बुन दिया है । क्या उस शोषण से नारी कभी मुक्त हो पायेगी ? साथ ही सामाजिक रूढ़ियों से टक्कर लेने वाला व्यक्तित्व प्रमोद के चरित्र द्वारा अपनी बुआ के लिए उठाए गए किसी सकारात्मक कदम के अभाव में क्या मात्र भावुकता का ही कोष बनकर ही नहीं रह जाता ?

4 - `कल्याणी`

सन् 1939 ई० में प्रकाशित जैनेन्द्र जी का चौथा उपन्यास `कल्याणी` है । उपन्यास की नायिका `कल्याणी` को विदेश में डाक्टरी की शिक्षा लेते हुए एक युवक से प्रेम हो जाता है । जिससे वह प्रेम करती है, वह युवक नेता और प्रीमियर है । शिक्षा प्राप्त कर स्वदेश लौटने पर डाक्टर असरानी के घटना चक्र में पड़ कर उसे असरानी से विवाह करना पड़ता है । डाक्टर असरानी शिक्षित होते हुए भी रूढ़िवादी संस्कारों से ग्रस्त है, जबकि कल्याणी आधुनिक विचारों से अनुप्राणित युवती है । अत: दोनों के विचारों में अन्तर होने के कारण तादात्म्य स्थापित नहीं हो पाता है । डाक्टर असरानी अपनी पत्नी से अपेक्षा रखता था कि उसकी पत्नी कल्याणी आदर्श गृहिणी की भांति घर की सम्पन्नता का साधन बनी रहे । लेकिन असरानी उसे अपने अनुकूल न पाकर दुश्चरित्रता का आरोप लगाकर उसे पीटता भी है और अन्तत: उसे घर से निकाल देता है । कल्याणी इसके बावजूद भी विद्रोह नहीं करती है । वह अपने पति के अत्याचारों को सहते हुए अपने निजत्व को दबाये हुए पुत्र जन्म के अवसर पर अपने दुखी जीवन से पलायन कर जाती है । मुख्य रूप से कहा जाए तो रचनाकार इस उपन्यास में आधुनिक सुशिक्षित नारी और प्राचीन भारतीय संस्कृति के द्वन्द्व को मानसिक धरातल पर चित्रित करता है ।

इस उपन्यास में जैनेन्द्र ने मुख्य रूप से एक साथ नारी की कमाऊ भूमिका और पारिवारिक संबंधों में उठने वाली विसंगतियों को उभारा है । इन दोनों भूमिकाओं में नारी किस तरह फँस कर टूटती रहती है, उसकी आत्मपीड़ा और कुंठा को आवाज देने की कोशिश उपन्यासकार ने की है । जैसा कि कल्याणी का कहना है --

`दोनों में से कोई एक मुझे चुनकर दे दो । पतिव्रता या डाक्टरी (मैं पति में परायण हो जाऊं या डाक्टरी की कमायी करके दूं । दोनों साथ होना कठिन है ।`[1]

यहाँ मध्यवर्गीय पति की उस मानसिकता का भी पर्दाफाश किया गया है, जिसमें वह एक तरफ तो आवश्यकता पूर्ति के लिए धन हेतु पत्नी को नौकरी करने देना चाहता है तो दूसरी ओर अपनी मानसिक संकीर्णता के कारण पत्नी की स्वतन्त्र स्थिति से शंकालु होकर कुण्ठित होता रहता है । इससे वैवाहिक जीवन में कटुता बढ़ जाती है । इन परिस्थितियों में कल्याणी जैसी आधुनिक, धर्म परायण एवं सद् विचारों वाली महिला पति की गलत मानसिकता की शिकार हो जाती है ।

5 - `सुखदा`

सन् 1952 ई० में प्रकाशित जैनेन्द्र जी का पाँचवाँ उपन्यास `सुखदा` है । उपन्यास की कहानी आत्मकथा शैली में कही गई है । उपन्यास की नायिका `सुखदा` सुशहाल परिवार की युवती है । डेढ़ सौ रुपये पाने वाले के साथ उसका विवाह हो जाता है, लेकिन आर्थिक विषमता के कारण पति-पत्नी में मन-मुटाव हो जाता है । `सुखदा` का नौकर `गंगा सिंह` काम छोड़ कर चला जाता है और दूसरे-तीसरे दिन समाचार-पत्रों में वह चित्र देखती है कि `क्रांतिकारी गंगासिंह` गिरफ्तार कर लिया गया है । गंगासिंह की यह छवि देखकर सुखदा के लिए गंगासिंह एक प्रेरणास्रोत बन जाता है और वह स्वयं क्रांतिपथ की ओर अग्रसर होती है, जहाँ हरीश नामक क्रांतिकारी से उसका परिचय होता है । क्रांतिकारी दल में रहते हुए उसका लाल से सम्पर्क बढ़ जाता है जो इसके सौन्दर्य का उपासक है । स्वयं सुखदा भी उसके प्रेम में विह्वल हो उठती है । कुछ समय बाद लाल उसे छोड़ कर चला जाता है और इसी बीच हरीश दल भंग कर देता है और वह सुखदा के पति को पाँच हजार रुपये इनाम के रूप में दिलवाने के हेतु स्वयं को गिरफ्तार करवाने के लिए प्रोत्साहित करता है । मित्रता का ध्यान रखते हुए कान्त (सुखदा का पति) यह रुपया लाकर पत्नी को दे देता है । पति के इस व्यवहार से पत्नी को ठेस पहुंचती है । अत: वह

पति को छोड़ कर अपनी माँ के पास चली जाती है और अन्त में क्षयरोग से पीड़ित होकर अस्पताल में जीवन की अन्तिम सांसें गिनती है ।

इस उपन्यास में जैनेन्द्र जी ने प्रेयसी और पत्नी की द्वन्द्वात्मक चेतना को मुखर करने का प्रयास किया है । उन परिस्थितियों से उपन्यासकार ने पाठकों को रूबरू कराया है जिसमें एक नारी न तो पूरी तरह पत्नी बन सकी और न पूरी प्रेयसी । आज की ज्वलन्त समस्या आर्थिक विषमता, जिसके कारण दाम्पत्य जीवन नर्क बन रहा है, वह सुखदा के माध्यम से उभर कर सामने आ जाती है । आधुनिक नारी का वह रूप शोषण की व्यवस्था को चुनौती दे रहा है । उसका सशक्त प्रतिनिधित्व सुखदा करती है । पति की चिर दासता से स्वच्छन्दता की वकालत में वह आवाज़ उठाती हुई कहती है कि 'परदा छोड़ो, पतियों की गुलामी मत करो । देश की स्वतन्त्रता में हाथ बटाओ ।'[2]

6 - 'विवर्त'

सन् 1952 ई० में प्रकाशित 'विवर्त' जैनेन्द्र जी का छठा उपन्यास है । यह उपन्यास इनके पूर्व उपन्यासों से भिन्न है । भिन्नता इस अर्थ में कि इसके पूर्व इन्होंने जितने भी उपन्यास लिखे थे, वे सभी नारी प्रधान उपन्यास थे, लेकिन यह पुरुष प्रधान उपन्यास है । उपन्यास के केन्द्र बिन्दु में जितेन नामक पात्र है । जितेन एक अंग्रेज़ी पत्र के सम्पादकीय में काम करता है । जज की लड़की भुवनमोहिनी अपने सहपाठी जितेन से प्रेम करते हुए विवाह भी करना चाहती है, लेकिन जितेन अपनी सामाजिक आर्थिक विषमता को ध्यान में रखते हुए भुवनमोहिनी से विवाह नहीं करता । फलस्वरूप वह हीनता का शिकार होने के साथ-साथ वह क्रांतिकारी भी बन जाता है। बाद में भुवनमोहिनी का विवाह बैरिस्टर नरेश से हो जाता है । विवाह के चार वर्ष पश्चात् अकस्मात एक दिन क्रांतिकारी के रूप में जितेन पंजाब मेल ट्रेन उलटाकर उसके घर अतिथि के रूप में

पहुँचता है । तब वह जितेन नहीं था, सहाय था । कुछ दिन जितेन वहाँ पर रह कर कुछ आभूषणों को चुरा कर भाग जाता है । जितेन के क्रांतिकारी साथी इन आभूषणों को बेचने के लिए विवश करते हैं, लेकिन वह चाहता है कि भुवनमोहिनी को पकड़ कर लाया जाए और बदले में नकद पचास हजार रुपये लेकर लौटा दिया जाए । भुवनमोहिनी इसके लिए असमर्थता प्रकट करती है और जितेन का पैर पकड़ कर चूमती है । उससे वशीभूत होकर जितेन क्रूरता छोड़ देता है और अपने दल की देखभाल का दायित्व भुवनमोहिनी को सौंप कर अपने को पुलिस के हवाले कर देता है ।

इस उपन्यास में जैनेन्द्र ने पत्नी और प्रेयसी दोनों रूपों को बारी-बारी से सशक्तता प्रदान की है । फिर भी पति के एकरस प्रेम की अपेक्षा प्रेमी के आक्रामक प्रेम को अधिक तरजीह दी गई है । नारी भी पुरुष के जीवन को मोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है । इसका उदाहरण भुवनमोहिनी है, जिसकी अहंवादी परिणति ने उसके प्रेमी जितेन को क्रांतिकारी बना दिया। नारी के भीतर पति और प्रेमी के सम्बन्धों को लेकर जो द्वन्द्व चलता है, उसको उपन्यासकार ने इस रचना में वाणी दी है । नारी अपने सौन्दर्य का प्रयोग पुरुष को आकर्षित करने के लिए एक हथियार के रूप में करती है । इसका एक प्रमाण भुवनमोहिनी का चरित्र है, जो अन्ततः अपने पति से कट कर प्रेमी जितेन को आकर्षित करना चाहती है । इसमें सम्पूर्ण नारी व्यक्तित्व का एक ढाँचा खड़ा करने के लिए जैनेन्द्र ने एक अन्य पात्रा तिन्नी का चरित्रांकन भी किया है जो नारी जीवन की असीम करुणा प्रेम और त्याग का प्रतिनिधित्व करती है ।

7 - `व्यतीत`

सन् 1953 ई० में प्रकाशित `व्यतीत` जैनेन्द्र जी का सातवाँ उपन्यास है। इस उपन्यास की कथा इस प्रकार है। जयन्त एक क्षमतावान युवक था। इस लिए उसके पिता और स्वयं उसकी आकांक्षा थी कि प्रतियोगिता में बैठ कर उच्च पद प्राप्त करे। लेकिन यह आकांक्षा टूट जाती है। जयन्त दूर की रिश्ते की बहिन और पिता के घनिष्ठ मित्र की पुत्री अनीता से प्यार करता था। लेकिन जब इस रहस्य का पता घर वालों को चलता है तो उसे घर से निकाल दिया जाता है। प्रेम में असफल होने के बाद जयन्त पचहत्तर रुपये मासिक के वेतन पर सह-सम्पादन करके अपना जीवन निर्वाह करने लगता है। अनीता का विवाह मिस्टर पुरी के साथ कर दिया जाता है। अनीता अपने पति से जयन्त को अच्छी नौकरी दिलाने के लिए कहती है लेकिन जयन्त अच्छी नौकरी को ठुकरा देता है। तब अनीता जयन्त के मालिक से उसकी स्थिति को बता देती है। फलस्वरूप उसका मालिक अपनी पुत्री सुमिता का विवाह जयन्त से करना चाहता है, लेकिन इसे भी जयन्त स्वीकार नहीं करता। वह स्वयं नौकरी छोड़ कर घर चला जाता है तथा युद्ध में जाने का निश्चय कर लेता है। तभी उसकी भेंट अपने मित्र कुमार से होती है। कुमार अपनी पत्नी उदिता के साथ विलायत जाना चाहता है। कुमार की बहन चन्द्री भी साथ जाने के लिए जिद करती है। कुमार इस विपत्ति को टालने के लिए जयन्त के आगे चन्द्री के विवाह का प्रस्ताव रखता है। इस प्रस्ताव को जयन्त स्वीकार कर लेता है। परिणामस्वरूप जयन्त का चन्द्री के साथ विवाह हो जाता है। चन्द्री चाहती है कि जयन्त सम्पूर्ण रूप से उसका होकर रहे, लेकिन जयन्त की उदासीनता ऐसा होने नहीं देती, जिसके कारण चन्द्री उसे छोड़ कर चली जाती है। इन सब असफलताओं के कारण वह फौज में भर्ती हो जाता है और युद्ध में घायल होकर अस्पताल में आता है। पुनः चन्द्री आकर उसकी सेवा करती है। वही अनीता उससे पुनः चन्द्री को अपनाने के लिए आग्रह करती है। किन्तु वह उदासीन रहता है। उसकी उदासीनता से परेशान

होकर अनीता उसके आगे अपने आप को समर्पित कर देती है और उपदेश देती है कि वह हमेशा अपने लिए जीता आया है, जबकि मनुष्य को दूसरों के लिए भी जीना होता है । इस उपदेश से उसके मन में विरक्ति पैदा हो जाती है और वह संन्यासी बन जाता है ।

यहाँ भी जैनेन्द्र पत्नीत्व और प्रेयसीत्व के प्रश्न को उभारना चाहते हैं । प्रेम का त्रिकोण दो शृंखलाओं में चलता है । अनीता और चन्द्री दोनों के जीवन में विवाह और विवाह पूर्व प्रेम को लेकर बराबर द्वन्द्व की स्थिति रही । इस प्रक्रिया में उनका वैवाहिक जीवन क्षुब्धता से भर जाता है । दोनों नारी पात्र पत्नीत्व की अपेक्षा प्रेयसीत्व को अधिक महत्व देती हैं । यह जैनेन्द्र का अपना जीवन दर्शन है जो बार बार उनके उपन्यासों में उभर कर सामने आता है । नायिका अनीता के अवचेतन में अपने प्रेमी के प्रति अपराध बोध के द्वारा उपन्यासकार ने अन्तर्द्वन्द्व को अधिक गहराई प्रदान की है । उपन्यास की अन्य पात्रा चन्द्री को भी इसी तरह पत्नीत्व और प्रेयसीत्व रूप में दिखा कर जैनेन्द्र दाम्पत्य जीवन की असफलता की ओर इशारा करते हैं, साथ ही प्रेम के क्षेत्र में त्याग और बलिदान के महत्व को भी स्थापित करते हैं । परन्तु प्रश्न उठता है कि ये दोनों पात्रा पत्नी और प्रेयसी दोनों में से किसी एक भूमिका में क्यों नहीं सफल होसकीं ? इसके अलग-अलग दो कारण हो सकते हैं । प्रेम क्षेत्र में आकर्षण और विमुखता और पत्नीत्व के क्षेत्र में प्रेमबद्धता और यांत्रिक पतित्व ।

8 - `जयवर्धन`

सन् 1956 ई० में प्रकाशित `जयवर्धन` जैनेन्द्र जी का आठवाँ उपन्यास है । यह उपन्यास जैनेन्द्र की अपनी परम्परा से हट कर लिखी गई रचना है । इसके पूर्व के उपन्यासों में प्रेम की त्रिकोणीय प्रवृत्ति पर बल दिया गया था, जबकि

इसमें ऐसा कुछ नहीं है । जैनेन्द्र का यह सबसे बड़ा उपन्यास है जो डायरी शैली में लिखा गया है । उपन्यास के पात्र हैं इला, जयवर्धन, आचार्य जी, चिदानन्द जी स्वामी, डा० नाथ आदि । इन्हीं पात्रों के द्वारा रचनाकार ने कथा का ताना-बाना बुना है । इन पात्रों में कोई साम्य भी नहीं है, क्योंकि वे सभी भिन्न राजनीतिक विचारों से जुड़े हैं। इला विरोधी दल के आचार्य की पुत्री है और जयवर्धन की सहकर्मिणी । दोनों एक साथ एक ही महल में अविवाहित रूप से रहते हैं । विवाह न करने का कारण आचार्यकी अनुमति न मिलना है । जयवर्धन के सहयोग के लिए नाथ का दल आगे आता है । इस दल की नेत्री श्रीमती नाथ (लिजा) है, जो जयवर्धन के प्रति आकर्षित है और उसे पाने के लिए अपने पति को छोड़ने के लिए तैयार है । किन्तु जयवर्धन राष्ट्राधिपति के पद को अनावश्यक मानते हुए पद त्याग करके सर्वदलीय सरकार बनाने के लिए राष्ट्र के सभी दलों का आह्वान करता है । इसी अवसर पर आचार्य ने जयवर्धन को इला के साथ विवाह की स्वीकृति प्रदान कर दी किन्तु अगले ही दिन जयवर्धन उसे छोड़ कर पलायन कर गया ।

~~इसमें भी जैनेन्द्र ने पत्नीत्व और प्रेयसीत्व के प्रश्न को उठाया है ।~~ परन्तु लेखक ने अपने अन्य उपन्यासों से थोड़ा हटते हुए इस उपन्यास में प्रेयसी को ही पत्नी की भूमिका में देखना चाहा, जिसमें वह सफल नहीं हो सका, क्योंकि इला को बहुप्रतीक्षित प्रेमी जय का पत्नीत्व प्राप्त होने पर जय पलायन कर जाता है । इससे उसका पत्नीत्व खण्डित ही रहता है । इस उपन्यास की अन्य पात्रा श्रीमती नाथ को उपन्यासकार ने स्वच्छन्द प्रकृति वाली आधुनिक नारी के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है, जो न तो प्रेयसी बन पाती है और न पत्नी, बल्कि सहज सुलभ नारीत्व और समर्पण भाव से युक्त एक युवती ही बन सकी । इस पात्रा की सृष्टि उपन्यासकार ने संभवत: इला के समक्ष तुलना के लिए और उसके एकनिष्ठ प्रेम को अधिक बल प्रदान करने के लिए की ।

9 - `मुक्तिबोध`

सन् 1967 ई० में प्रकाशित `मुक्तिबोध` जैनेन्द्र जी का नौवाँ उपन्यास है । कथा का नायक सहाय सांसद है । दल के नेता की ओर से उसे मंत्री पद के लिए निमंत्रण मिलता है किन्तु गांधीवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण वह इससे उदासीन रहता है । वह जानता है कि पिछले पंद्रह वर्षों से जो भी व्यक्ति राज्य संचालन हेतु कुर्सी पर विराजमान होता है, वह अपनी ही स्वार्थ-पूर्ति में लगा रहता है । इन सब चीज़ों को उसका विवेक स्वीकार नहीं कर पाता । लेकिन स्वजन, मित्र, पत्नी, पुत्री आदि के आग्रह एवं दबाव में आ कर वह द्विव्य मन से मंत्री बन जाता है ।

इस उपन्यास में राजनीतिक चिंतायें मुख्य रूप से उभर कर सामने आयी हैं । इसलिए इसके पात्रों के चरित्र का विश्लेषण `परिवार` और `बाहर` की स्थितियों के समन्वय की दृष्टि से किया गया है । इसमें पात्राओं का जो रूप उभारा गया, उससे भारतीय मध्यवर्गीय आदर्श पत्नी का अधिक रंग झलकता है । उपन्यास की प्रमुख पात्रा राजश्री जैनेन्द्र के सभी उपन्यासों में सबसे अधिक धर्मपत्नी या सहधर्मिणी कोटि की नारी के रूप में प्रस्तुत है । यह इस दृष्टि से अन्य पात्राओं से थोड़ा सा हटकर है । इसमें राजश्री पति और प्रेमी की द्वन्द्वात्मक चेतना के बीच नहीं उलझी । अत: राजश्री के माध्यम से उपन्यासकार ने सहज, स्वाभाविक और विश्वसनीय पत्नी का रूप उभारा है, जो एक भारतीय आदर्श है । उपन्यास की अन्य पात्रा `नीलिमा` को उपन्यासकार ने पत्नी की अपेक्षा प्रेयसी का स्थान प्रदान किया ।

10 - `अनन्तर`

सन् 1968 ई० में प्रकाशित `अनन्तर` जैनेन्द्र जी का दसवाँ उपन्यास है । इस उपन्यास की कथा अपरा के व्यक्तित्व के चारों ओर घूमती है । उपन्यास की कथा वन्या के शांतिधाम निर्माण की योजना से प्रारंभ होती है, जिसके लिए वह प्रसाद से सहायता माँगती है । इसी समय आदित्य, उसकी पत्नी चारु, व बच्चे भी वहाँ आ जाते हैं । आदित्य पहले तो शांतिधाम में कोई रुचि नहीं लेता, लेकिन फिर भी एक दिन अपरा के आग्रह से वशीभूत होकर आर्थिक सहयोग के लिए मान जाता है । आदित्य एक नया प्रोजेक्ट खड़ा करने के लिए बम्बई चला जाता है और साथ में अपरा भी चली जाती है । आदित्य के साथ रहते हुए भी अपरा,चारु के प्रेम की रक्षा करती है । इस प्रयत्न में वह आदित्य द्वारा पीटी भी जाती है । इधर चारु से अपरा का यह व्यवहार देखा नहीं गया, यद्यपि आदित्य और अपरा के सम्बन्ध शून्य मात्र ही रहे । इसका प्रमाण अपरा के शरीर पर पड़े हुए पिटाई के निशान हैं, जो चारु को दिखाई दे जाते हैं । अत: उसे पता चल जाता है कि किस प्रकार अपरा ने आदित्य को झेला है । अन्तत: चारु को उसका पति सौंप कर अपरा स्वयं अलग हो जाती है ।

इसमें जैनेन्द्र ने मुख्य रूप से तीन नारी पात्रों - रामेश्वरी, अपरा और चारु के माध्यम से पत्नी और प्रेयसी - जीवन की समस्याओं और रूपों को उभारने का प्रयास किया है। ये तीनों अलग अलग व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती हैं । रामेश्वरी पत्नीत्व वर्ग की नारी है । उसमें सफल पत्नीत्व, सुदृढ़ वात्सल्य एवं पारिवारिक ममत्व है । अपरा पत्नी की अपेक्षा प्रेयसी के अधिक निकट है परन्तु उसकी सफलता वहीं तक है जहाँ उसका पुरुष के प्रति नारी जन्य कर्त्तव्य है । तीसरी नारी पात्र चारु पत्नीत्व वर्ग में सामान्य भारतीय नारी के रूप में चित्रित हुई है । इन तीनों के माध्यम से जैनेन्द्र ने सामाजिक जीवन के पारिवारिक ढांचे का रूप खड़ा किया है ।

11 - `अनामस्वामी`

सन् 1973 ई० में प्रकाशित `अनाम स्वामी` जैनेन्द्र जी का ग्यारहवाँ उपन्यास है । यह उपन्यास जैनेन्द्र की कृतियों में नयी पीढ़ी की समस्याओं को सर्वाधिक स्पर्श करता है, साथ ही गहराई में उतर कर जैनेन्द्र इन समस्याओं के समाधान का प्रयास भी करते हैं । एक विधवा को अपनी सन्तान के पालन-पोषण के लिए किन-किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, उस का खुलासा यह उपन्यास करता है ।

इस उपन्यास की मूल समस्या नारी के आधुनिक स्वच्छन्द रूप की है, जिसका प्रतिनिधित्व उदिता करती है । जैनेन्द्र ने इस नारी पात्र को भारतीय संस्कारों के प्रति चुनौती रूप में खड़ा किया । इसे किसी प्रकार का अंकुश मान्य नहीं है । यहाँ जैनेन्द्र का प्रेम के सम्बन्ध में एक भिन्न दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है । जैसा कि उदिता की सोच प्रमाणित करती है, प्रेम का समाधान विवाह में नहीं, बल्कि भुक्त-भोग में है --

> `प्रेम में स्थिरता नहीं होती, पर जो होता है वह कहीं मूल्यवान है । मैं सोच रही हूं कि प्रेम वह नहीं है जो बांधता है । वह है जो मुक्त करता है ।`[3]

इस उपन्यास में जैनेन्द्र ने नवीन प्रयोग किया है । प्रेम होना, छूटना, फिर होना, फिर छूटना यही उदिता के जीवन का क्रम है । यहां भारतीय संस्कारों को सर्वाधिक झटका तब लगता है जबकि उदिता बिना विवाह के गर्भ धारण करती है । ऐसा लगता है कि युवतियों की मुक्तिहीन चंचलता, असंयमितता, स्वातंत्र्य के प्रति सावधानी आदि कारणों से जैनेन्द्र ने इस नारी पात्र की सृष्टि की ।

oo

---

1. जैनेन्द्र कुमार - कल्याणी, पृ० 40
2. वही, सुखदा, पृ० 21
3. वही, अनाम स्वामी, पृ० 251

दूसरा अध्याय

'त्यागपत्र' में नारी मुक्ति का प्रश्न

(1) नारी मुक्ति की अवधारणा

(2) नारी मुक्ति के विविध स्वरूप

(3) त्यागपत्र में नारी मुक्ति

(क) - व्यक्तिगत मुक्ति

(ख) - सामाजिक मुक्ति

'त्यागपत्र' में नारी मुक्ति का प्रश्न

(1) नारी मुक्ति की अवधारणा

नारी मुक्ति कोई काल्पनिक या अमूर्त अवधारणा नहीं है, बल्कि यह एक ठोस और यथार्थवादी अवधारणा है जो मानव होने के नाते बुद्धिजीवियों द्वारा काफी समय के बाद पहचानी गयी। हालांकि इसके समर्थकों की संख्या अभी उतनी नहीं है जितनी होनी चाहिए। साथ में इनमें कुछ ऐसे हैं जो ऊपरी मन से इसका समर्थन करते हैं, परन्तु निजी जिन्दगी में अपनी पत्नी के साथ उसी क्रूरता से पेश आते हैं जिसका वे मंच से जोरदार विरोध करते हैं। इस अवधारणा का जुड़ाव सीधा समाज और सामाजिक होने के नाते निरन्तर पिसने वाली स्त्री के जीवन के उन मोड़ों से है जिनमें वह पुरुष की सामंतवादी प्रवृत्ति का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। जैसा कि 'इतिहास बोध' पत्रिका के वर्कशाप में कहा गया लड़की का यह कथन -'लोग वर्ग की बात करते हैं, पर किसी भी वर्ग का पुरुष नारी के लिए सिर्फ पुरुष ही साबित होता है।'[1] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि खुद को दासता से मुक्ति की आवाज उठाने वाला पुरुष वर्ग भी नारी के लिए वही व्यवस्था कायम रखना चाहता है जो स्वयं उसे पसंद नहीं। स्त्री उसी समाज का अविभाज्य अंग है, जिसे पुरुष ने अपने हित में खड़ा किया। अतः नारी की मुक्ति तब तक संभव नहीं है, जब तक कि इस पूरे सामाजिक ढांचे में परिवर्तन न किया जाए और उसे नारी के हर पहलु से जोड़ कर पुनर्व्यवस्थित न किया जाए क्योंकि नारी की मुक्ति समस्त समाज की वास्तविक मुक्ति का अनिवार्य और अविभाज्य अंग है। जैसा कि पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा है कि लोगों में जागृति लाने के लिए सर्वप्रथम नारियों को जागृत करना आवश्यक है। एक बार जब वह गतिशील हो जायेंगी, परिवार, गांव तथा राष्ट्र सभी गतिशील होंगे। समाज पूरी तरह से तभी बदलता

है जब व्यवस्था की प्रकृति और चरित्र बदलते हैं । इसलिए नारी की मूल समस्याओं का हल सारे समाज की समस्याओं के हल के साथ ही संभव है । चूंकि समाज की सारी समस्याओं का हल एक साथ इतनी जल्दी संभव नहीं है, इसलिए नारी दासता की, इस क्रूरता की समाप्ति के लिए हम तब तक प्रतीक्षा भी नहीं कर सकते । साथ ही नारी की जैवकीय और मनोवैज्ञानिक रूप से कुछ अपनी भी अलग से समस्याएं हैं और इन सारे शोषणों के मूल में अपने ही जीवन साथी पुरुष की कहीं-न-कहीं महत्वपूर्ण भूमिका के चलते यह पीड़ा और अत्याचार और भी असहनीय हो जाता है । इसलिए नारी मुक्ति के सवाल को सामाजिकता के पहलू में रखते हुए भी सबसे पहले उस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है जो नारी शोषण के केन्द्र रहे हैं, और जिनसे मुक्ति दिलाने का समाज का नैतिक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य दायित्व है । इसके अलावा आज जो पुरुष चारों ओर मानव स्वतन्त्रता, मौलिक अधिकारों, नागरिक अधिकारों, शोषण और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है तो उसी के द्वारा नारियों की दासता को वैधता प्रदान करने का कोई औचित्य नहीं रह जाता है । साथ ही यह बात उसकी स्वतन्त्रता के प्रति दोगली नीति की पोल खोल देती है । इसलिए पुरुषों ने न चाहते हुए भी नारी मुक्ति के आन्दोलन में नारियों और कुछ प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के साथ-साथ उनकी हां में हां मिलाने का महत्वपूर्ण दायित्व निभाया, जो सफलता की दृष्टि से कम परन्तु लक्ष्यकी ओर बढ़ने की नज़र से अधिक महत्वपूर्ण रहा । मानवतावादी दृष्टिकोण से भी यदि देखा जाय तो नारी की दासता पुरुष के लिए कोई स्वाभिमान और प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं है, उल्टे मानवीय सभ्यता पर कलंक है । जिसके चलते ईश्वर की महत्वपूर्ण कृति मानव द्वारा आपस में इस भेद-भाव से उसका अपना ही विकास अवरुद्ध होता है । साथ ही यह बात हर एक बुद्धिजीवी को पुरुष के ऊपर उंगली उठाने का मौका देती है । जैसा कि `प्रथम प्रतिश्रुति` की लेखिका आशापूर्णा देवी स्वीकार करती हैं -`पुरुष बड़ी गलती करे तो भी कुछ नहीं होता । पर नारी की छोटी गलती पर उसे कड़ा दण्ड दिया जाता है । जिस

समाज को मानव ने बनाया, उसी समाज की दृष्टि में मानव और मानव के बीच यह भेद क्यों ?"[2]

यद्यपि प्राचीन काल में ही पुरुष के अत्याचारों के खिलाफ भी नारियां व्यक्तिगत तौर पर कभी-कभार ही आवाज उठाती थीं परन्तु उनकी संख्या कम होने के कारण आसानी से कुचल दी जाती थीं । परन्तु व्यापक रूप से समस्त नारी समुदाय की समस्याओं को लेकर एक साथ पुरुष अत्याचार के खिलाफ और नारी स्वातंत्र्य के लिए आन्दोलन यूरोप में 19 वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में और भारत में बीसवीं शताब्दी में शुरू हुए । तभी से नारियों के संगठन भी बनने लगे । इसके परिणामस्वरूप नारी मुक्ति और पुरुषों से समानता का अनेक दृष्टिकोणों से समर्थन किया गया । परन्तु यह समझना भूल होगी कि नारी मुक्ति आन्दोलन केवल प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों की ही समानता का आग्रह है, बल्कि यह मानव होने के नाते स्त्री को उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए उचित अवसर और सुविधा प्रदान करने का हिमायती है, जिससे स्त्री भोग्या और निरीह प्राणी न होकर बल्कि सशक्त मार्ग दर्शक बन सके । अतः जीवन केप्रत्येक क्षेत्र में नारी मुक्ति की आवश्यकता है । नारी मुक्ति को विविध आयामों में देखा जा सकता है --

(2) नारी मुक्ति के विविध स्वरूप

(क) राजनीतिक मुक्ति की अवधारणा

19 वीं शताब्दी में लोकतांत्रिक आन्दोलन की सफलता के परिणाम-स्वरूप समस्त जन समुदाय को मताधिकार प्रदान किया गया परन्तु उसके बावजूद भी मताधिकार से महिलाओं को बाहर रखने ही का सामान्य नियम बन गया । दोनों विश्व युद्धों में महिलाओं की प्रशंसनीय भूमिका ने स्त्री मताधिकार के लिए

जनान्दोलन को अत्यधिक शक्ति प्रदान की । साथ ही कुछ चिन्तकों का ध्यान भी इस ओर गया और उन्होंने स्त्री मताधिकार का समर्थन किया । तो कुछ दूसरों ने इसके विरोध में अपना तर्क दिया । विरोधियों में फाइनर और ब्लटशिली की टिप्पणियां महत्वपूर्ण हैं । फाइनर के शब्दों में --

'महिलाओं को मताधिकार से वंचित रखने का प्रश्न राजनीतिक गतिविधि में महिलाओं के भाग लेने की आवश्यकता के किसी विवेकपूर्ण विचार से उद्भूत नहीं था, वरन् मैथुनिक भूमिका, पारिवारिक जीवन और धार्मिक सिद्धान्तों द्वारा निर्धारित महिलाओं की सामान्य सामाजिक स्थिति से उत्पन्न था ।'[3]

यदि फाइनर ने स्त्री मताधिकार का विरोध नैतिक आधार पर किया तो ब्लटशिली ने पारिवारिक जीवन की विसंगतियों को आधार बनाया और स्वयं कहा --

'महिलाओं को राजनीति में लाकर, महिला मताधिकार, पारिवारिक जीवन को अस्त-व्यस्त करता है, क्योंकि परिवार का कल्याण पति की अपेक्षा पत्नी के ऊपर अधिक निर्भर होता है ।'[4]

इसके अलावा उस समय समाज में यह माना जाता था कि यदि पत्नी ने अपने पति से भिन्न मतदान किया तो पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न होगा और यदि पति का अनुकरण किया तो यह व्यर्थ जायेगा । यह तर्क दिया जाता था कि महिलाएँ नागरिकता के समस्त कर्तव्यों और दायित्वों को सम्पन्न करने में खास कर सैन्य सेवा में शारीरिक दृष्टि से अनुपयुक्त थीं । महिलाएँ अधिकांश मामलों में विवेक की अपेक्षा संवेदना द्वारा अधिक निर्देशित होती हैं जो राजनीति के लिए अनुपयुक्त है ।

इन विरोधियों के विपरीत महिला मतदान के समर्थकों ने अनेक तर्क दिये हैं । इन्होंने कहा कि सैन्य सेवा के तर्क को उन देशों में लागू नहीं किया जा सकता

है जहाँ सैन्य सेवा ऐच्छिक है । साथ ही जब कानून सभी पुरुषों और महिलाओं पर समान रूप से प्रभावी होता है, तो पुरुषों के ही द्वारा उसका गठन नहीं किया जा सकता । यह भी तर्क दिया गया कि राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं के प्रवेश से सार्वजनिक जीवन स्तर ऊंचा उठेगा । स्त्री मताधिकार के प्रबल समर्थक जे. एस. मिल का भी इसी तरह का कहना है कि -"मैं राजनीतिक अधिकारों के संदर्भ में इसको उतना ही पूर्ण रूप से अप्रासंगिक मानता हूं जितना ऊंचाई अथवा बालों के रंग के रंग में अन्तर को अप्रासंगिक मानता हूं । यदि कोई अन्तर हो सकता है, महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा इसकी अधिक आवश्यकता है, क्योंकि शारीरिक दृष्टि से निर्बल होने के कारण वे अपनी सुरक्षा के लिए कानून और समाज पर अधिक निर्भर रहती हैं ।"[5]

इस प्रकार अनेक आरोपों-प्रत्यारोपों के बावजूद सभी राष्ट्रों में धीरे-धीरे स्त्री मताधिकार को स्वीकार कर लिया गया । भारत में संविधान निर्माण करने के साथ ही स्त्री मताधिकार (सार्वभौमिक मताधिकार) को स्वीकार कर लिया गया। भारत में स्त्री मताधिकार को स्वीकार किए जाने का विरोध इसलिए नहीं हुआ कि स्वतंत्रता आन्दोलन में स्त्रियों की भूमिका सराहनीय रही । वे किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम नहीं रहीं । यहां तक कि क्रान्तिकारी कार्यों में भी उन्होंने हिस्सा लिया । इनमें कल्पना दत्त, प्रीतलता वाडेकर, वीनादास आदि के नाम उल्लेखनीय रहे हैं । अत: संविधान निर्माताओं ने स्त्रियों के अधिकार को पूरा सम्मान दिया, परन्तु उनका यह अधिकार तब तक निरर्थक रहेगा, जब तक कि उन्हें आर्थिक और पारिवारिक स्वतन्त्रता न हो ।

DISS
0,152,3,N05,17:9
152N7
TH-6306

(ख) आर्थिक मुक्ति की अवधारणा

स्त्री का पुरुष पर निर्भरता का एक क्षेत्र आर्थिक भी है । जहाँ समाज में बाहर नौकरी करने का अधिकार केवल पुरुष को ही था, वहाँ धीरे-धीरे स्त्री ने नौकरियों में प्रवेश करना प्रारम्भ करके इस धारणा को तोड़ा है । फिर भी अभी कुछ क्षेत्रों में उनकी भागीदारी काफी कम है । स्त्री दिन रात घर

के कामों में खटती हैं परन्तु उसके कार्य का मूल्य उसे कुछ भी नहीं मिलता, उल्टे किसी काम में देर हो जाने पर, पति और परिवार के अन्य सदस्यों की फिड़की ही उसे मिलती है। साथ ही निकम्मा पति भी केवल आठ घण्टे के कार्यालयीय काम करने के बाद जो कुछ कमा लाता है, उससे घर का सारा खर्च चलता है। स्त्री को मिलती है दो जून की रोटी और तन ढकने का कपड़ा। साथ में पति के साथ बिस्तर में कुछ क्षण। इसके लिए उसे जी तोड़ दिन भर की मूल्यहीन मेहनत करनी पड़ती है। अत: आवश्यक है कि उसके श्रम को भी सीधा उत्पादन से जोड़ा जाय। हमेशा आजीविका कमाने में पुरुष की अपेक्षा स्त्री का घरेलू काम तुच्छ समझा जाता है। उसका उत्पादन से सीधा सम्बन्ध नहीं बन पाता है, जबकि परोक्ष रूप से उसका घरेलू श्रम भी उत्पादन में सहायक होता है। इसी कारण पुरुष की स्थिति विशिष्ट हो गई और स्त्री महत्व-हीन रह गयी। अत: स्त्रियों की स्वतन्त्रता तभी पूर्ण रूप से सफल होगी जबकि उन्हें भी सामाजिक स्तर पर उत्पादन में बड़ी संख्या में भागीदारी प्रदान की जा सकेगी। साथ ही इस बात की भी व्यवस्था हो कि घरेलू कामकाज केवल उसी की जिम्मेदारी न हो, बल्कि परिवार के अन्य सदस्य भी उसमें बराबरी से हाथ बटायें। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि जो स्त्रियां नौकरी पेशे से जुड़ी हुई होती हैं, उन्हें भी घरेलू कार्यों से मुक्ति नहीं मिलती। आफिस से दिन भर थक कर आने के बाद भी उन्हें घरेलू काम करने पड़ते हैं। साथ ही पति के किसी कार्य में देर होने पर उसे उसकी कमाऊ भूमिका के लिए फिड़की भी सुननी पड़ती है। साथ ही यदि वह किसी सहयोगी पुरुष के साथ कभी आती जाती और अधिक बातचीत करती देख ली गयी तो उसके ऊपर पति शंका करने लगता है। परन्तु कमाऊ पति चाहे जितनी स्त्रियों के साथ घूमे और उन्मुक्त वार्तालाप करे, वह इन सभी आक्षेपों से सदैव मुक्त रहता है। अत: आज आवश्यकता है कि औरत की पुरुष पर निर्भरता समाप्त करने की आवाज उठाई जाए। साथ ही स्त्री को बैसाखी के सहारे पर आश्रित न करके वे परिस्थितियाँ निर्मित की जाय, जिनसे वह स्वत: मुक्ति की ओर बढ़ें। आज समाज में आर्थिक

रूप से स्वतन्त्र महिलाएं भी मानसिक स्तर पर पुरुष की गुलाम होती हैं । उन्हें उसी विशेष प्रक्रिया में कार्यालय आना जाना होता है जो पति निर्देशित करता है । कभी-कभी देर हो जाने पर फटकार भी सुननी होती है । अत: इस दासता से मुक्त होने के लिए नारी को स्वयं कमर कसना पड़ेगा ।

(ग) सामाजिक मुक्ति की अवधारणा

औरत को औरत बनाने में समाज की महत्वपूर्ण भूमिका है । समाज के सारे नियम पुरुषों द्वारा ही निर्मित किए गए हैं, जिनके निर्माण में औरत की कोई भूमिका नहीं रही । परिणामस्वरूप नारी के लिए पुरुषों द्वारा मनमाने नियम बनाये गए । पुरुष द्वारा अपने लिए 'बहु विवाह' का नियम बनाया गया जो मात्र उसकी कामोत्तेजना की पूर्ति हेतु था । उसका समाज में कोई औचित्य नहीं था । नवाबों और राजाओं के हरमों मे ऐसी न जाने कितनी स्त्रियाँ थीं, जिन्होंने पति का मुँह सुहाग की रात के बाद फिर कभी नहीं देखा । 'सती प्रथा' वाले समाज में स्त्री से ही इस प्रकार के अनुराग की मांग क्यों की गई ? क्यों नहीं एक भी पुरुष का उदाहरण मिलता जो पत्नी के साथ चिता में जल गया हो ? 'वैधव्य' यदि स्त्रियों को विवाह करने की अनुमति नहीं देता तो पुरुष पत्नी के मर जाने पर पुनर्विवाह क्यों कर लेता है ? क्या पुरुष के लिए नारी एक महती आवश्यकता है जिसके बिना वह जी नहीं सकता ? तो फिर स्त्री के लिए पुरुष की आवश्यकता क्यों नहीं ? जबकि आश्रय का सहारा तो स्त्री को अधिक लेना पड़ता है । इस क्यों का जवाब प्रसिद्ध नारीवादी लेखिका सीमोन दबौउवार देती है -'औरत जन्म से ही औरत नहीं होती, बल्कि बढ़ कर औरत होती है । कोई भी जैविक मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियंता नहीं होती । पूरी सभ्यता ही इस अजीबोगरीब जीव का निर्माण करती है ।'[6]

यद्यपि आज आधुनिक शिक्षा ने नारी स्वतन्त्रता को बहुत अधिक बढ़ावा दिया है परन्तु समस्त स्त्री जाति की शिक्षा और उसमें भी उच्च शिक्षा का यदि प्रतिशत निकाला जाय तो यह संख्या नगण्य ही मिलेगी । ग्रामीण क्षेत्रों में बालिकाओं को जो शिक्षा दी जाती है, उसमें ज्यादातर उन्हीं बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित कराया जाता है जो बालिकाओं को आदर्श गृहिणी बनाने में सहायक हों । आज भी तीसरी दुनिया के लगभग सारे देशों की शिक्षा प्रणाली औरतों को वही शिक्षा प्रदान करती है जो पुरुष वर्चस्व को चुनौती न दे सके । ऐसी स्थिति में यदि सारी औरतें शिक्षित भी हो जाएँ तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा । अत: आवश्यकता इस बात की है कि औरत की शिक्षा संघर्ष के लिए हो, जिससे वह स्वतन्त्र होकर अपनी अस्मिता, अस्तित्व और स्वाभिमान के लिए जीना सीखें ।

आज विश्व में निरन्तर महिला आन्दोलनों के सक्रिय रहने और अन्तर्राष्ट्रीय महिला आयोग एवं महिला सम्मेलनों के बावजूद पुरुष अपना दाँव-पेंच खेलने से बाज नहीं आता । कारण सभी क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका की कमी है । खास कर विज्ञान और टेक्नालोजी के क्षेत्र में, पुरुष सुविधा भोगी जीव अपनी सुख-सुविधा के लिए महिलाओं को बलि का बकरा बनाता चला जा रहा है । समाज ने परिवार नियोजन की सारी जिम्मेदारी सिर्फ महिलाओं पर थोप दी है । जो भी गर्भ निरोधक उपाय किये जाते हैं, उनका 95 प्रतिशत केवल महिलाओं के लिए होता है । अभी हाल ही में नीदरलैण्ड के वैज्ञानिकों ने यह घोषणा की है कि गर्भ निरोधक गोलियों से खून जमने का खतरा बढ़ रहा है । फिर भी पुरुष स्त्री को गर्भ निरोधक गोलियां खाने को बाध्य कर रहा है । इसी प्रकार गर्भ रोधी आपरेशन पुरुष अपना नहीं बल्कि पत्नी का कराने में अधिक रुचि लेता है, जबकि शोध बताते हैं कि औरत की अपेक्षा पुरुष का आपरेशन आसान और कम खतरेवाला होता है । फिर भी पुरुष इसके लिए स्त्री को ही बाध्य करता है, जो उचित नहीं है । अत: आवश्यकता है इसके प्रति समाज में जागरूकता पैदा करने की ।

(घ) पारिवारिक मुक्ति की अवधारणा

वैवाहिक बन्धन और परिवार का एक बना बनाया ढांचा भी स्त्री को उसकी स्वतन्त्रताओं से विमुख रखने का माध्यम है । वास्तव में यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो विवाह प्रेम को नष्ट कर देता है । विवाह के कुछ दिन बाद पति-पत्नी के बीच उत्पन्न होने वाली घृणा, सम्मान और स्नेह की अति पत्नी के काम-सौन्दर्य को समाप्त कर देती है । परिणामस्वरूप स्त्री गुलामों सा जीवन व्यतीत करती है । परिवार के अन्य सदस्य भी हर बात में भाई या बेटे का ही साथ देते हैं परन्तु बहू की तरफ से एक भी आवाज नहीं उठती । इससे धीरे-धीरे स्त्री के सम्मान को ठेस लगती जाती है और अंत में वह दासता को अपनी नियति मान बैठती है । प्रभा खेतान ने अपने उपन्यास `छिन्नमस्ता` में विवाह के इस ढांचे पर प्रश्नात्मक चिन्ह लाया, साथ ही आंख मूंद कर वैवाहिक बन्धन को स्वीकार न करने वाले पात्रों का सृजन किया । उपन्यास की पात्रा प्रिया का कहना है कि --

> `क्यों ? क्या चुटकी भर सिंदूर से ही पत्नी कहलाने का हक मिल जाता है और बीस वर्ष बिना सात फेरे के बन्धन को यों ही नकार दिया जा सकता है ?`[7]

आज जरूरत है समाज के इस पुरुषवादी ढांचे को तोड़ने की । तभी नारी की स्वतन्त्रता का अगला चरण पूरा होगा । कुछ हद तक आधुनिक युग की नारियों ने इस ओर कदम बढ़ाया है । परिणामस्वरूप औरत की गुलामी को समाप्त करने के लिए पारिवारिक ढांचा तोड़ा जा रहा है । अधिकतर स्त्रियों द्वारा ऐसा परिवार पसंद किया जा रहा है जिसमें पति-पत्नी और उसके अविवाहित बच्चे होते हैं । इस प्रकार संयुक्त परिवार का ढांचा टूटने से स्त्रियाँ अब सास-ससुर और देवर तथा ननद के अत्याचार से मुक्ति का अनुभव कर रही हैं । संयुक्त पारिवारिक ढांचा टूटने का एक और कारण स्त्री की कमाऊ भूमिका है, जिससे उसने परिवार ही नहीं, बल्कि विवाह संस्था यानी पति

को भी नकारने का साहस दिखाया, जैसा कि सिमोन दबोउवार का कथन है --

'आर्थिक विकास के कारण औरत की समकालीन स्थिति में आगे भारी परिवर्तनों ने विवाह संस्था को भी हिला दिया है । विवाह अब दो स्वतन्त्र व्यक्तियों के बीच एक पारस्परिक समझौते से उत्पन्न बन्धन है, जो व्यक्तिगत तथा पारस्परिक होता है ।'[8]

(ङ) नैतिक मुक्ति की अवधारणा

वर्तमान परिवेश में आज औरत को ही क्यों सारी नैतिकताओं के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है ? धार्मिक ठेकेदारों को औरत के ही चारित्रिक पतन की क्यों ज्यादा चिन्ता सताती है ? वह पुरुष को क्यों नहीं इतना अधिक नैतिक और स्वच्छ बनाना चाहता है ? मानवता के सभी गुण-प्रेम, दया, सहानुभूति, त्याग समर्पण आदि गुण क्यों औरतों में ही ज्यादा देखने की चाह रहती है ? पुरुष प्रधान समाज क्यों उनसे इन सभी गुणों की अपेक्षा रखता है ? वास्तव में बहुत लम्बे समय से एक बने बनाए ढांचे और प्रक्रिया के तहत औरतों को गुलाम रखने का प्रयास किया गया था और ये सभी नैतिक गुण उस गुलामी को वैध ठहराने का एक उपक्रम हैं, जिससे कि इसको तोड़ने का साहस रखने वाली स्त्रियां भी अपनी बहादुरी का खुलेआम ऐलान न कर सकें ।

प्रभा खेतान 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की पात्रा प्रिया के माध्यम से पुरुष की इसी चालाकी का पर्दाफाश करती है । प्रिया अब सब समझ गयी है कि समर्पण, त्याग, प्रेम - ये सब पुरुष अहं की तुष्टि के निमित्त निर्धारित उपेक्षाएं हैं --

'कुछ नहीं । सब कहूं नरेन्द्र, ये शब्द भ्रम हैं । औरत को यह सब इसलिए सिखाया जाता है कि वह इन शब्दों के चक्र-व्यूह से कभी न निकल पाए ताकि युगों से चली आती आहुति की परंपरा को कायम रखे ।'[9]

यद्यपि इन नैतिक गुणों का विरोध सार्वभौमिक तौर पर नहीं किया जा सकता है, परन्तु उसके सुझाए रास्ते से जाना भी गुलामी को स्वीकार करने से कम नहीं है । अतः यदि औरत आज इसको तोड़ती है, तो यह उसकी उच्छृंखलता न होकर मुक्ति ही कही जायेगी । इसलिए इन नैतिक मूल्यों का आज की औरतों के लिए ज्यादा महत्व नहीं रह गया है, वह पुरुष प्रधान समाज की चालाकियों से वाकिफ हो गयी है ।

(च) धार्मिक एवं सांस्कृतिक मुक्ति की अवधारणा

प्राचीन काल से धर्म ने ही इस पुरुष अत्याचार प्रधान समाज को बरकरार रखा है । इसी के कारण पत्नी पर लोक के डर से निकम्मे पति को भी पति मानकर झेलते रहने और सारा जीवन पतिव्रत के पालन में नरक की तरह बिता देने में अपनी गरिमा का अनुभव करती हैं, जबकि यह उसकी गरिमा नहीं, बल्कि बेबसी और लाचारी है जो पुरुष प्रधान समाज द्वारा खड़ी की गयी है ।

आखिर क्यों जितने धार्मिक अनुष्ठान हैं, वे केवल स्त्रियों के लिए बनाए गए हैं ? हिन्दू धर्म में `तीज`, `करवा चौथ` आदि व्रत केवल स्त्रियाँ ही रखती हैं । पुरुष के लिए क्यों नहीं, ऐसा विधान किया गया ? यही वे बन्धन थे जिनके चलते नारी को पुरुष के वर्चस्व में रखा गया और उसके अन्दर हीनता की ग्रन्थि को बरकरार रखा गया । `रक्षा बन्धन` जैसे त्यौहार में केवल बहन ही क्यों भाई को राखी बांधती है और भाई की दीर्घायु की कामना करती हैं और भाई से यह आशा करती हैं कि वह उनकी रक्षा करेगा । यह मानसिकता भी उनकी हीनता की ग्रन्थि को और विकसित करती है । क्यों नहीं भाई बहन की दीर्घायु की कामना करता और बहन को रक्षा बन्धन बांधता ? यह सब पुरुष प्रधान समाज की चालाकियां थीं, जिनसे उसने नारी दासता के हथियार के रूप में बराबर प्रयुक्त किया ।

इसी तरह ईसाई धर्म में स्त्रियों को सामाजिक सेवाओं में भाग लेने के लिए और धर्म प्रचार करने के लिए बढ़ावा तो दिया गया परन्तु जब स्त्रियों के पोप बनने की बात उठाई गई तो तथाकथित प्रगतिवादी कहे जाने वाले ईसाई समाज की भी पोल खुलकर सामने आ गयी । ईसाई धर्म के बड़े-बड़े ठेकेदारों और पोपों ने इसका जमकर विरोध किया । परन्तु अन्त में स्त्री को लम्बे संघर्ष के बाद इसमें सफलता मिली । इसलिए आज नारी को पुरुष द्वारा बनाए गए किसी भी नीतिगत या धार्मिक बन्धनों में पड़ने की जरूरत नहीं, जबकि इस पूरे पुरुष प्रधान समाज की सारी कलई खुल गयी है । इसी हकीकत का और अधिक खुलासा करती हुई गीतांजलि श्री अपने उपन्यास 'माई' में पात्रों के माध्यम से प्रश्न खड़ा करती हैं -- पत्नियाँ पतियों के लिए तो व्रत रखती हैं, पर पति पत्नियों के लिए क्यों नहीं ? दुपट्टा क्यों ज़रूरी है ? स्त्री पुरुष के बीच आखिर सेक्स और प्रेम के सम्बन्ध में खुली बातचीत क्यों नहीं हो सकती । भाई-बहन के बीच एक खुलापन क्यों नहीं ? स्त्री की अपवित्रता पर सवालिया निशान लगाते हुए वे कहती हैं कि -'मासिक धर्म आने पर उसे घर भर में अस्पृश्य करार दे दिया गया । मैं कुछ समझी, कुछ नहीं समझी, पर खून में ज्वर हो आया । सब के आगे आंखें झुक गईं । जो माँ बन सकती है, वह अपवित्र कैसे ?'[10]

पाश्चात्य जगत में पुनर्जागरण युग में व्यक्तिवादिता का प्राधान्य होने से लेखक, कलाकार और संगीतकारों को सम्मानित करने में किसी प्रकार की लिंग और जाति सम्बन्धी विषमता आड़े नहीं आती थी । इसी कारण कला की सर्वोच्चता को धीरे-धीरे समाज ने स्वीकारना प्रारम्भ किया जिसके चलते इस क्षेत्र में शिक्षित स्त्रियों ने भी अपना योगदान दिया । इनमें से कुछ नाम उभर कर अधिक सामने आए । अद्वितीय प्रतिभा से सम्पन्न स्त्रियों ने कला समाज में पुरुष के एक मात्र वर्चस्व को चुनौती दी और उनके बराबर आ खड़ी हुई ।

कला के क्षेत्र में जो माध्यम सबसे अधिक क्रान्तिकारी स्त्री चेतना को जन्म दे सका, वह है चलचित्र का विकास । इसने ऐसी-ऐसी अभिनेत्रियां प्रदान कीं जो समाज में बहुत अधिक लोकप्रिय रहीं । इन अभिनेत्रियों ने समाज में स्त्रियों की सीमित स्वतन्त्रता की बेड़ियों को तोड़ा और खुल कर पर्दे पर उन सभी भूमिकाओं का सफलतापूर्वक अभिनय किया जो समाज द्वारा स्त्री जाति के लिए निषिद्ध थी । इनके इस प्रकार के साहसिक कार्यों से स्त्रियों का सामाजिक बन्धनों से मोह भंग हुआ और वे भी मुक्त समाज में पूर्ण स्वतन्त्रता की आशा से आगे बढ़ीं । चलचित्र द्वारा मुक्ति चेतना के आह्वान का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आज भी कुछ पिछड़े ग्रामीण समाज में बहू-बेटियों द्वारा चलचित्र देखना बहुत अच्छा नहीं समझा जाता । समाज के ठेकेदारों का तो यहाँ तक कहना है कि चलचित्र के द्वारा चारित्रिक पतन को बढ़ावा मिलता है । इस प्रकार नारी मुक्ति का यह आन्दोलन एक साथ कई क्षेत्रों में चलता रहा है । आज भी इसके लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न निरन्तर किए जा रहे हैं । यद्यपि इनमें पुरुष बराबर के भागीदार हैं परन्तु इतिहास साक्षी है कि इस सम्बन्ध में पुरुष की नीयत बहुत ज्यादा साफ नहीं है । अत: जरूरत इस बात की है कि स्त्री बिना किसी की सहायता लिए स्वयं आत्मशक्ति का इतना अधिक विकास करे कि उसके मार्ग में आने वाली हर बाधा चीख कर उठे । परन्तु इसके लिए स्त्री को नीयत भ्रष्ट पुरुषों द्वारा दिए गए सारे विशेषण और तथाकथित नारियोचित गुणों को तिलांजलि देनी होगी, जैसा कि कवि महेश्वर की कविता का यह भाव --

रोओ तो ऐसे रोओ
कि आंसुओं में झिलमिला उठे
जागृत मनुष्य का विषाद
तुम बढ़ो
सागर की ज्वार की तरह बढ़ो
और दफ्न कर आओ तमाम जुल्मो-सितम
सात समन्दर पार बियाबान में ... ।[11]

(ङ) कानूनी मुक्ति की अवधारणा

कानूनी मुक्ति की अवधारणा एक तरह से स्त्री स्वतन्त्रता को वैध करार देने की प्रक्रिया है । फिर भी पुरुष प्रधान समाज अपनी चालाकी और मक्कारी से ऐसा रास्ता तलाश ही लेता है जिससे वह स्त्री का बराबर अपनी सुविधा के लिएउपयोग करता रहे । आज समाज में इतने ज्यादा स्त्री के साथ बलात्कार हो रहे हैं, जो इस बात का प्रमाण हैं कि भारतीय कानूनी सुविधा स्त्री के लिए कितनी नाकारा साबित हो चुकी है । बलात्कार निरोधी कानून स्त्री को सिर्फ एक शरीर ही साबित करता है । इसकी कानूनी प्रक्रिया इतनी जटिल है कि शायद ही कोई स्त्री पूरा न्याय पाती है । इसी तरह दहेज़ की कुप्रथा को रोकने के लिए लाख कानून बने परन्तु इस समाज के ठेकेदारों के कान पर जूं तक नहीं रेंगी । इसका प्रमाण आज भारी दहेज लेकर होने वाले विवाह और दहेज के लिए नारी-हत्याएँ हैं । इसी तरह वेश्यावृत्ति पर अनेक कानून बनने के बावजूद यह धंधा सरेआम सरकार की नाक के नीचे चल रहा है । केरल में एक मंदिर (सबरी माला) है जहाँ आज भी जवान औरतों को प्रवेश करना निषिद्ध है जो कि यह सिद्ध करता है कि भारतीय संविधान की कैसी खिल्ली जगह-जगह उड़ाई जा रही है ।

(ज) जैवकीय मुक्ति की अवधारणा

प्राचीन काल से ही लोगों के बीच यह धारणा काम कर रही है कि स्त्रियाँ पुरुष की तुलना में हीन और कम क्षमता वाली होती हैं । इस लिए घर के बाहर कठिन कार्यों में उनकी सफलता की संभावना पुरुष की अपेक्षा कम है । परिणामस्वरूप स्त्री घर की वस्तु मानी जाने लगी और उसे बाहरी कार्यों की मनाही हो गयी । परन्तु विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि नारियां जीवविज्ञान की दृष्टि में पुरुषों से अधिक शक्तिशाली होती हैं । इसके साथ ही आधुनिक युग में स्त्रियों ने सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का परिचय

देकर प्राचीन धारणा को गम्भीर झटका दिया है । आज स्त्रियाँ केवल अस्पताल में नर्स और स्कूल में अध्यापिका ही नहीं, बल्कि रेलगाड़ी, हवाई जहाज और लड़ाकू जहाज को भी चलाने का काम कर रही हैं । यहाँ तक कि वे पुरुषों के साथ-साथ अंतरिक्ष में भी जा रही हैं ।

(3) 'त्यागपत्र' में नारी मुक्ति

(क) व्यक्तिगत मुक्ति

व्यक्तिगत मुक्ति का एक रूप 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल के उन्मुक्त प्रेम भाव और उसके चरित्र द्वारा उभरता है । मृणाल इस मुक्ति के लिए पारिवारिक और सामाजिक मर्यादाओं के सरोकारों के बन्धन को स्वीकार नहीं करती है, बल्कि खुद इस बन्धन को वह झटककर स्वतन्त्र मार्ग अपनाती है। इसीलिए वह किशोरावस्था में अपनी सहेली शीला के भाई के प्रति आकर्षित हो जाती है और मन ही मन अनेक रंगिन सपने बुनती है । इसी प्रेम के वशीभूत होकर वह अपने भतीजे अबोध प्रमोद से बहकी-बहकी बातें भी करती है । कभी उससे वह पतंग उड़ाने की बात करती है । इसी प्रेम के कारण वह शीला के भाई से घनिष्ठ संबंध रखने और मिलने-जुलने के लिए भाभी द्वारा प्रताड़ित भी होती हैं । लेकिन वास्तविकता यह है कि वह अपने प्रेम को खुले रूपों में अभिव्यक्ति नहीं कर पाती है, बल्कि वह खुद निषेधात्मक वाक्यों का प्रयोग करती है । इसीलिए वह अपने प्रेम को चिड़ियों और पतंगों की भांति अपनी आन्तरिक भावनाओं को इतने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती हुई कहती है --

> 'मैं नहीं बुआ होना चाहती । बुआ ! छी: ! देख, चिड़ियाँ कितनी ऊँची उड़ जाती हैं । मैं चिड़ियाँ होना चाहती हूँ ।'[12]

लेखक ने प्रेम का चित्रण अत्यन्त कुशल और मार्मिक ढंग से हल्के रंगों के साथ केवल संकेत रूप में किया है । इनसे हमें मृणाल की सारी

आकांक्षाओं का पूरा-पूरा आभास मिल जाता है । इसी प्रवृत्ति की ओर लक्ष्य करके डा० विमल सहस्र बुद्धे ने स्पष्ट शब्दों में कहा --

> 'इस प्रकार उसके मन में मुक्ति के भाव हैं जो बार-बार उमड़ आते हैं पर वे अस्थिर हैं । मन के भाव बताना चाहती है, शब्द ओठों तक आते हैं । पर उन भावों को न बताकर प्रकृति की मुक्ति का चिड़ियों के माध्यम से अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का संकेत करती है ।' 13

मृणाल का इस प्रकार स्वच्छन्द प्रेम इस बात की ओर इशारा है कि लेखक यहीं प्रेम का जो रूप खड़ा कर रहा है वह बहुत कुछ पाश्चात्य जगत का स्वच्छन्द प्रेम है । फिर भी वह अपने उस रूप में पूर्णत: उभर कर सामने ना आ सका । कारण इस प्रेम का चित्रण करने वाला भारतीय संस्कारों में पला-पुसा व्यक्ति है । अत: उस पर भारतीय प्रेम जीवन की मर्यादाओं का कुछ न कुछ प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है । नहीं तो जिस तीव्रता और उन्मुक्तता के साथ मृणाल के प्रारंभिक जीवन की नींव उपन्यासकार ने रखी थी, उस पर यह समझौतावादी वैवाहिक बन्धन और पतिव्रता के झूठे आदर्श का पैबंद न लगाता । अब प्रश्न उठता है कि उपन्यासकार अपनी इस प्रक्रिया में कहाँ तक सफल रहा ? इसके लिए हमें उन बिन्दुओं की पड़ताल करनी होगी जो मृणाल जैसे एक ही पात्र में दो परस्पर विरोधी गुणों, आदर्शवादिता और स्वच्छन्दता वाले व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं । जहाँ तक आदर्शवादिता का सवाल है, वह उपन्यासकार की अपनी मान्यताओं और विवशताओं के चलते खोखली और बनावटी साबित होती है क्योंकि मृणाल की उम्र और भावनाओं का उद्रेक उसे आदर्श के पल्लू से ज्यादा देर तक बंधे नहीं रहने देता । अत: पहले पति के गृह से परित्यक्ता होने के साथ ही मृणाल ने भी इस आदर्शों का परित्याग कर दिया । रही-सही कसर परिस्थितियों की विषमता ने पूरी कर दी ।

इसी तरह मृणाल की स्वच्छन्दता भी पूर्णत: तो नहीं परन्तु बहुत कुछ सफल कही जा सकती है । मृणाल ने कभी भी अपने मन को मार कर किसी के बन्धन को स्वीकार नहीं किया । उसने सामाजिक मर्यादाओं को तोड़ा और

एक ऐसे उन्मुक्त मार्ग का चयन किया जो आने वाली पीढ़ियों के लिए भी नारी स्वतन्त्रता का आधार स्तम्भ बन गया । परन्तु लेखक द्वारा मृणाल की जीविकोपार्जन हेतु कोई वैकल्पिक व्यवस्था न कर पाने के कारण उसकी स्वतंत्रता अधूरी रह गयी । इसी आर्थिक मजबूरी और तंगहाली के कारण मृणाल जैसी आधुनिक नारी के व्यक्तित्व का एक पहलू कमजोर पड़ गया जिसकी कमी सदैव पाठक को सताती रहेगी ।

स्त्री की व्यक्तिगत मुक्ति वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने के बाद भी संभव है । लेकिन विवाह के बाद स्त्री के लिए बने-बनाये पितृसत्तात्मक समाज में लम्बे चौड़े प्रतिमान निर्धारित हैं । उन प्रतिमानों को उसे तोड़ना होगा क्योंकि स्त्री स्वतन्त्र रूप से अपने व्यक्तित्व का निर्माण करने में स्वयं को अक्षम महसूस करती है । इन्हीं संस्कारों में जकड़न की वजह से स्त्री अपनी मानवीय संवेदना को प्रकट करने से वंचित रह जाती है । यदि कोई स्त्री इन संस्कारों के बन्धनों को तोड़ कर अपनी मानवीय संवेदना को अभिव्यक्ति करती है, तो उसे परिवार एवं समाज में भर्त्सना का शिकार बनना पड़ता है । परम्परागत संस्कारों को तोड़ने के लिए जैनेन्द्र ने `त्यागपत्र` उपन्यास में यह दिखाया है कि व्यक्तिगत मुक्ति वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने के बाद भी सम्भव है । इसलिए रचनाकार ने `त्यागपत्र` की नायिका मृणाल के चरित्र द्वारा व्यक्तिगत मुक्ति का आह्वान किया है । मृणाल विवाह के बाद अपने पति से लड़-झगड़ कर बिना आज्ञा के वह अपनी ससुराल से मैके चली आती है और फिर दुबारा अपनी ससुराल जाने की अनिच्छा अपने बड़े भाई से जाहिर करती है और स्वयं कहती है --`कुछ भी बात नहीं है बाबूजी, पर मैं जाना नहीं चाहती हूं ।`[14] पर मृणाल जिस रूप में अपना विचार प्रकट कर रही है, यह व्यक्तिगत मुक्ति का एक पहलू है क्योंकि वह किसी के बन्धन में बंध कर जीना नहीं चाहती है, बल्कि वह अपने अनुसार मानदण्ड निर्धारित करने के लिए आतुर है ।

व्यक्तिगत मुक्ति का एक अन्य रूप `त्यागपत्र` की नायिका मृणाल के चरित्र में देखने को मिलता है । वह ससुराल से मैके आने के बाद अपने पूर्व प्रेमी शीला के भाई से प्रेम सम्बन्ध बरकरार रखना चाहती है । वह बराबर अपने प्रेमी की ओर आकर्षित तो होती है परन्तु उसका पतिव्रता आदर्श उसे जीने नहीं देता । अंत में प्रेम पर आदर्श और सामाजिक दबाव की विजय होती है और वह पुन: पति के घर जाने के लिए तैयार हो जाती है । या यूं कहें कि वह पतिगृह जाने के लिए विवश कर दी जाती है । इस प्रकार मृणाल में व्यक्तिगत मुक्ति का जो रूप उसके स्वच्छन्द प्रेम के माध्यम से उभरता है, वह लेखक के व्यक्तिगत आग्रह के चलते बहुत अधिक सफल नहीं हो पाता । फिर भी इन सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त नारी उत्पीड़क समाज में माता-पिता जैसे संरक्षक के अभाव में पतिगृह जाने का विरोध एक मायने में क्रांतिकारी कदम है ।

व्यक्तिगत मुक्ति का एक दूसरा रूप `त्यागपत्र` की नायिका मृणाल के चरित्र द्वारा आदर्शवादिता के रूप में उभरता है । कोई स्त्री वैवाहिक बन्धन में बंध जाने के फलस्वरूप अपने पूर्व प्रेमी को भूल जाती है । यही अपेक्षा स्त्री से परिवार और समाज करता है । लेकिन `त्यागपत्र` की मृणाल इसके ठीक विपरीत अपने पूर्व प्रेमी के बारे में अपनी भावनाओं को अपने पति से सच-सच बता देना चाहती है । इसीलिए वह स्वयं कहती है --`व्याहता को पतिव्रता होना चाहिए । उसके लिए पहले उसे पति के प्रति सच्ची होना चाहिए । सच्ची बनकर ही समर्पित हुआ जा सकता है ।`[15] मृणाल सत्यता के कारण अपने पूर्व-प्रेमी के पत्र का जिक्र पति से कर देती है -``एक पत्र आया था, मैं एक सिविल सर्जन हूं ।`[16] पर इस सत्यता का परिणाम उल्टा निकलता है क्योंकि मृणाल का पति जब उसके गुप्त प्रेम के बारे में जान जाता है, तो वह अपनी पत्नी को क्षमा नहीं कर पाता, बल्कि वह उसी दिन से पत्नी के प्रति उपेक्षा का भाव अपना लेता है । मृणाल पति के रास्ते में रोड़ा नहीं बनना चाहती है, बल्कि वह खुद अपना स्वतन्त्र मार्ग अपना लेती है । स्वयं कहती है - `मैं स्त्री धर्म को पतिव्रत धर्म ही मानती हूं । उसका स्वतन्त्र धर्म मैं नहीं मानती हूं । क्यों पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता, तब भी वह अपना भार उस

पर डाले रहे ? मुझे देखना भी नहीं चाहते, यह जानकर मैंने उसकी आंखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया ।'[17]

मृणाल के शंकालु पति की ओर इशारा करते हुए स्वयं डा० बलराज सिंह ने कहा कि -

> 'मृणाल का शंकालु पति उसकी सरलता और सच्चाई का कोई मूल्य नहीं समझता है और उसे अपने घर से निकाल देता है । इस सच्चाई उगल देने के परिणामस्वरूप मृणाल पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ता है । यहाँ मृणाल के मन में चेतावनी के भाव हैं । वह नियति के हाथ का खिलौना बनकर दर-दर की ठोकरें खाने के लिए विवश होती है ।'[18]

अब प्रश्न उठता है कि मृणाल का वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने के बाद व्यक्तिगत मुक्ति किस रूप में सफल रही है ? जैसा कि उपन्यास के कथानक से ज्ञात होता है कि वैवाहिक बन्धन के फलस्वरूप व्यक्तिगत मुक्ति में कुछ समय के लिए परिस्थितियों वश रुकावट उत्पन्न हो जाती है । यह रुकावट कुछ भैया, भाभी और समाज के कारण है और कुछ स्वयं के कारण होती है । परन्तु इसके बावजूद अन्ततः मृणाल की व्यक्तिगत मुक्ति आत्मपीड़न के रूप में सफल रही । मृणाल सिर्फ अपनी मुक्ति नहीं चाहती है, बल्कि समाज में रहने वाले सारे स्त्री समुदाय की मुक्ति चाहती है । यह उसके आधुनिक मानस की देन है । यहाँ रचनाकार ने परम्परागत संस्कार को ध्वस्त करके एक नवीन सिद्धांत प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है ।

पतिगृह से निष्कासित होने के बाद भी स्त्री की व्यक्तिगत मुक्ति संभव है । परन्तु परिवार और समाज ने जो उसके लिए कठोर नियम बनाये हैं, उस के चलते स्त्री अपनी ससुराल से वंचित होने के बाद स्वतन्त्र रूप से निर्णय लेने के काबिल नहीं समझी जाती है और समाज ऐसा करने के लिए उसे इजाजत नहीं देता । नारी को समाज पुरुष की केवल अर्धांगिनी के रूप में ही

देखना चाहता है । इसलिए पुरुष से अलग होने पर स्वतन्त्र नारी व्यक्तित्व समाज के गले नहीं उतरता । इसलिए पतिगृह से निष्कासित होने के बाद स्त्री आश्रय की खोज में सबसे पहले मैके आती है । लेकिन इस परम्परा के विपरीत 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल पतिगृह से निष्कासित होने के बाद मैके नहीं जाती है, बल्कि खुद वह स्वतन्त्र रूप से निर्णय लेती है । स्वयं वह एक रूप लोभी कोयले वाले बनिये के संसर्ग में रहना पसंद करती है । उसे वह पति मान लेती है । यहाँ भी विडम्बना देखिए कि लेखक ने इतने क्रान्तिकारी कदम के बाद भी स्त्री का स्वतन्त्र व्यक्तित्व पूर्णत: स्वीकार नहीं किया । मृणाल को उपन्यासकार एक पुरुष वर्चस्व से निकाल कर दूसरे पुरुष की दासी बना देता है । परन्तु फर्क इतना हुआ कि जहाँ पहले पति के यहाँ मृणाल जबर्दस्ती भेजी गयी थी, वहीं कोयले वाले के यहां वह स्वेच्छा से और बहुत कुछ उसकी सहायता भाव से प्रभावित होकर आयी है । स्वयं अपने भतीजे प्रमोद से वह कहती है - 'प्रमोद, इसी से कहती हूं कि जब तक पास है उसकी सेवा में मैं त्रुटि नहीं कर सकती । पतिव्रत धर्म तो यही कहता है ।'[19]

यह व्यक्तिगत मुक्ति का ही अंग है, चाहे वह कितनी अधूरी मुक्ति हो । मृणाल को इस रूप लोभी कोयले वाले बनिये के आचरण के बारे में पता है कि वह एक दिन उसे छोड़ कर अपने परिवार में चला जाएगा । इस सत्य को जानते हुए भी मृणाल नि:स्वार्थ भाव से उसे अपना पति मान बैठती है और स्वयं भी चाहती है कि वह अपने परिवार में चला जाए । मृणाल कहती है कि - 'जानती थी, इसलिए मैं उसे साथ ले आई । वह बेरुखी का भाव अब शुरू हो गया है । अब उसे चले जाना चाहिए । परिवार वहीं उसका वहां अकेला है ।'[20] यहाँ यह देखा जा सकता है कि मृणाल का यह पति धर्म परम्परागत नहीं है । इस लिए मृणाल उसे अपना पति अपनी इच्छा से मान लेती है । यह प्रवृत्ति उसकी व्यक्तिगत मुक्ति का ही रूप है । भले इस प्रयास में उसे दर-दर की ठोकरें खानी पड़ें, उसे मंजूर है । इसी प्रवृत्ति की ओर इशारा करते हुए मंजुलता सिंह ने

कहा है कि - 'मृणाल उस मध्यमवर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें परम्परागत नारी की सहिष्णुता, समर्पण और उत्सर्ग की महती कल्पना तो है ही, साथ ही नारी स्वतन्त्रता आन्दोलन के फलस्वरूप बढ़ती हुई स्वतन्त्रता की मान्यताएँ भी विद्यमान हैं। पुरातन परम्परा के विश्वास और नवीनतम विचारों के संघर्ष में ही मृणाल का रूप कथाकार ने निर्मित किया है।'[21]

व्यक्तिगत मुक्ति का एक रूप 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल के चरित्र द्वारा आर्थिक रूप में उभर कर सामने आता है। मृणाल मुक्ति तो चाहती है, परन्तु किसी पुरुष की सहायता की मुखापेक्षिणी नहीं है। यह अदम्य विश्वास उसे एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान करता है। मृणाल आत्म-निर्भर होने के लिए एक अस्पताल में जाती है। एक अवैध बच्चे को जन्म देने के बाद वह उसी अस्पताल में नर्स बनने की प्रार्थना करती है। परन्तु इस प्रयास में असफल रही। इस असफलता का कारण मिशन की धार्मिक चाल रही है, क्योंकि मिशन का दरवाजा गैर ईसाइयों के लिए बंद होता है। उसकी शर्त है कि --'बच्चा मिशन को दे दो और तुम भी ईसा मसीह को मान लो।'[22] परन्तु मृणाल इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती है, बल्कि उसे ठुकरा देती है। क्योंकि नर्स बनने के लिए जो शर्त निर्धारित है, वह उसे मंजूर नहीं। इसलिए वह धर्म परिवर्तन नहीं करती है, बल्कि खुद अस्पताल छोड़ कर चली जाती है।

व्यक्तिगत मुक्ति का एक रूप मृणाल के उस प्रयास में भी दिखाई पड़ता है जहाँ वह एक प्रतिष्ठित परिवार से जुड़ जाती है और उनके बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर अपनी जीविका का साधन जुटाने का प्रयास करती है। परन्तु आर्थिक मुक्ति का यह प्रयास भी ज्यादा देर तक कारगर साबित नहीं हुआ। सामाजिक प्रतिष्ठा और भाग्य की विडम्बना ने यहाँ भी मृणाल के विपरीत खेल खेला। अन्ततः अपने भतीजे प्रमोद की प्रतिष्ठा दांव पर लगने से क्षुब्ध होकर मृणाल ने अंतिम सहारा भी त्याग दिया और एक अभिशप्त जीवन जीने के लिए अपने

को भाग्य के सहारे छोड़ दिया । फिर भी वह उस पुरुष उत्पीड़क तथाकथित प्रतिष्ठित समाज में दोबारा नहीं गयी, बल्कि स्वतन्त्र रूप में अपनी एक अलग दुनिया बसा लेती है जो कष्टपूर्ण और अभावों से भरी तो है परन्तु उसमें उसे सुकून है । इसीलिए वह व्यथित होने के साथ-साथ प्रसन्न भी है ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि `त्यागपत्र` की मृणाल आजीविका के लिए किसी पुरुष की मजबूत बाहों का सहारा न लेकर अपने श्रम और कौशल के द्वारा अपनी आर्थिक मुक्ति का प्रयास करती है । भले ही इस प्रयास में वह टूट जाती है ।

(ख) सामाजिक मुक्ति

नारी की सामाजिक मुक्ति का एक रूप प्रेम भी हो सकता है । इसलिए नारी को प्रेम करने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए और इसी के तहत उसे अपने पति का चुनाव करने की इजाजत भी । लेकिन सच्चाई यह है कि पितृसत्तात्मक समाज में नारी के लिए इस तरह का कदम निषिद्ध है । हालांकि कानून मान्यता भी देता है, लेकिन हमारा समाज ऐसा नहीं करने देता है । यदि कोई नारी चहारदीवारी को लांघकर मुक्त रूप से प्रेम करना चाहती है, तो उसे समाज में भर्त्सना का शिकार बनना पड़ता है । परिणामस्वरूप वह स्वतन्त्र रूप से कोई क़दम आगे नहीं बढ़ाती है ।उसी मूल्य के तहत वह सिमट कर रह जाती है । इसी परंपरागत ढांचे को तोड़ने के लिए जैनेन्द्र ने `त्यागपत्र` उपन्यास में एक नवीन दृष्टि दी ।

`त्यागपत्र` की नायिका मृणाल के चरित्र द्वारा सामाजिक मुक्ति का एक पहलू प्रेम के रूप में प्रकट होता है । मृणाल जाति, धर्म, परिवार, समाज के किसी भी बन्धन को स्वीकार नहीं करती है, बल्कि वह खुद इस बन्धन को तोड़ कर स्वतन्त्र रूप से प्रेम करने का निर्णय करती है और स्वतन्त्र रूपसे पति का चुनाव करना चाहती है । परन्तु वह सिर्फ अपनी ही मुक्ति नहीं चाहती है, बल्कि

वह समस्त नारी समुदाय की मुक्ति चाहती है । इसी मुक्ति के चलते वह नारी अधिकारों और विचारों की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करती है । संघर्ष का मार्ग ही समाज में मुक्ति का प्रेरणा स्रोत हो सकता है । इसीलिए मृणाल शीला के भाई से स्वतन्त्र रूप से प्रेम करने का निर्णय लेती है । भले ही इस निर्णय में उसे असफल होना पड़ा । अन्ततः वह हार नहीं मानती, बल्कि आगे और भी संघर्ष करने का रास्ता चुनती है ।(मृणाल यदि अपनी मुक्ति चाहती तो वह अपने प्रेमी से खुद शादी करके मुक्त हो जाती । इससे स्पष्ट हो जाता है कि `मृणाल` के संघर्ष का मार्ग ही समाज में मुक्ति का प्रेरणास्रोत बनता है । वह नारी समुदाय को उस स्वतन्त्र चेतना की राह दिखाती है जिससे सामाजिक मुक्ति का स्वरूप खड़ा होता है ।)

वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने के बाद भी स्त्री की सामाजिक मुक्ति संभव है । परन्तु विवाह के फलस्वरूप स्त्री के लिए जो परम्परागत कठोर बन्धन बनते हैं, उन्हीं बन्धनों के तहत स्त्री को अपना जीवन-निर्वाह करना पड़ता है । विवाह के बाद स्त्री को पुरुष का धर्म और वर्ग सब कुछ स्वीकार करना पड़ता है । वह पुरुष की अर्धांगिनी बन जाती है । उसकी सारी क्रियाएँ पति के द्वारा निर्धारित हैं । स्वतन्त्र रूप से उसे निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं रहता है । यदि कोई स्त्री इन अधिकारों के खिलाफ अपनी आवाज स्वतन्त्र रूप से उठाती है, तो उसे समाज में अपमान का घूंट पीना पड़ता है । यहाँ तक कि वह अपनी ससुराल में पति द्वारा त्याग दी जाती है । इसी परंपरागत ढाचे को तोड़ने का साहस जैनेन्द्र ने `त्यागपत्र` उपन्यास में मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है ।(`त्यागपत्र` की नायिका मृणाल के चरित्र द्वारा सामाजिक मुक्ति का एक रूप वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने के बाद उभर कर सामने आता है । मृणाल अपने पति के अनुसार जीना नहीं चाहती है, बल्कि वह खुद अपनी राह तलाशना चाहती है । इसलिए मृणाल परम्परागत ढाँचे को स्वीकार नहीं करती और संघर्ष का रास्ता अपना लेती है । विवाह के फलस्वरूप वह अपनी

ससुराल से बिना पति के आज्ञा के मैके चली आती है । यहां तक कि वह अपने पति से पूर्व प्रेमी शीला के भाई के बारे में भी सच-सच बता देती है । लेकिन अभी तक इस तरह का खुलापन, सच्चाई और विश्वास की नींव पति पत्नी के बीच पितृसत्तात्मक समाज में स्थापित नहीं हो पायी है । इसलिए 'मृणाल' अपने इस साहसिक अभियान में असफल रही । वह पति और अपने बीच जिस विश्वास और सच्चाई की पवित्र नींव डाल रही थी वह पुरुष-वादी सामाजिक पशुता का शिकार हो गई । जैनेन्द्र का यह स्वच्छन्द कदम शायद समय के पहले था । साथ ही उपन्यासकार को अपनी इस सामाजिक मान्यता पर ज्यादा विश्वास ना था, अन्यथा वह उसकी इस तरह यकायक असफलता न दिखाता । फिर भी मृणाल ऐसा करके क्रांतिकारिता का परिचय देती है । चूंकि मृणाल सिर्फ अपनी ही मुक्ति नहीं चाहती है, बल्कि वह स्त्री समुदाय की मुक्ति चाहती है । इसलिए वह इस तरह का कदम बढ़ा कर स्त्री वर्ग को संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती है जो स्वयं के संघर्ष करने से कहीं ज्यादा सबल और महत्वपूर्ण होगा ।

सामाजिक मुक्ति का एक पहलू परित्यक्ता रूप में मृणाल के चरित्र द्वारा उभर कर सामने आता है । परित्यक्त स्त्री के लिए परिवार और समाज में जो परम्परागत ढांचा निर्धारित है, उसी के अनुसार उपेक्षित रहकर सम्मान हीन जीवन जीना स्त्री के लिए मर्यादा समझा जाता था । लेकिन मृणाल परित्यक्त रूप में परंपरागत संस्कार को स्वीकार नहीं करती है, बल्कि वह खुद उस परंपरा को तोड़ने का साहस करती है । इसलिए वह एक रूप लोभी बनिये के संसर्ग में रहना पसन्द करती है और उसे अपना पति भी मान लेती है । यद्यपि वह भली प्रकार से जानती है कि रूप लोभी आदमी एक दिन उसे छोड़ कर चला जाएगा । इसके बावजूद भी वह निःस्वार्थ भाव से उसके साथ रहना पसंद करती है । इस परिस्थिति से मृणाल का भतीजा प्रमोद उसे उबारना चाहता है । लेकिन मृणाल उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती है, बल्कि वह खुद संघर्ष का

रास्ता अपना लेती है । वह अपनी ही मुक्ति नहीं चाहती है, बल्कि वह सारे नारी समाज की मुक्ति चाहती है । इसलिए वह स्वयं तर्क प्रस्तुत करती है --

> 'इस कोठरी में मैं न रहूंगी, कोई और रहेगा । ये कोठरियां तो आबाद ही रहेंगी । इनमें रहने लायक आदमी बहुत हैं ।'[23]

इस प्रसंग से ज़ाहिर होता है कि मृणाल सिर्फ अपनी ही मुक्ति नहीं चाहती है, बल्कि वह नारी समुदाय की मुक्ति चाहती है । इसलिए वह संघर्ष करती है और परम्परा को तोड़ती है । इन्हीं परम्पराओं का तोड़ना और पुरुष वर्चस्व में बनाए गए सामाजिक नियमों को दरकिनार करके अलग रास्ता चुनना ही सामाजिक मुक्ति है । यद्यपि प्रयास तो व्यक्तिगत मुक्ति का है परन्तु परोक्ष रूप से उसका प्रभाव सारे समाज पर पड़ता है । यही जैनेन्द्र जी की सीमा है, जिसके चलते उनके पात्र लाख क्रान्तिकारी होकर भी व्यक्तिगत मुक्ति से बहुत आगे का सफर नहीं तय कर पाते । फिर भी इसी के माध्यम से वे व्यापक सामाजिक मुक्ति का सांकेतिक ही सही पर ठोस आह्वान करते हैं ।

नारी की सामाजिक मुक्ति का एक पहलू आर्थिक मुक्ति से भी जुड़ा है । समाज में नारी की आर्थिक स्थिति अत्यन्त हीन है । इस हीनता का कारण पुरुषवादी व्यवस्था में नारी को सामाजिक और मानसिक रूप से अक्षम घोषित कर, हर मानवाधिकार से वंचित कर दिया जाता है । इसलिए नारी अपने अधिकारों से वंचित है और पुरुषों पर निर्भर है । समय-समय पर नारी अधिकारों की वकालत प्रगतिशील विचारकों द्वारा की जाती रही है । परन्तु उनके कुटिल मन्सूबों से अपेक्षित सफलता न मिली । आज प्रजातन्त्र के युग में राजसत्ता से यही उम्मीद की जाती है कि नारियों की आर्थिक मुक्ति का उपाय करेगी, या उसमें सहायक होगी परन्तु ऐसा कुछ करने में वह भी विफल दिखती है । इसी विफलता के परिणामस्वरूप आज नारियों का धैर्य जवाब दे रहा है । वे पुरुषों की हर चाल से वाकिफ हो गयी हैं । परिणामस्वरूप

व्यवस्था के विरोध में वे चुनौती बन कर आगे आ रही हैं । इसमें से एक मुद्दा आर्थिक भी है ।

`त्यागपत्र` की नायिका मृणाल आर्थिक मुक्ति के लिए परिवार और समाज से वह स्वयं संघर्ष करती है । भले ही इस प्रयास में विफल हो जाती है । परन्तु रूढ़ विचारों को खुले रूपों में चुनौती देती है । स्वयं मृणाल आत्म-निर्भर होने के लिए किसी पुरुष का सहारा नहीं चाहती है । वह अपनी आर्थिक स्वातंत्र्य को कायम रखने के लिए नर्स का काम करने की इच्छा जाहिर करती है । वह ट्यूशन भी पढ़ाती है । यहाँ तक कि अंत में वेश्यागिरी को भी स्वीकार करती है । यद्यपि वेश्यागिरी को नारी के आर्थिक स्वातंत्र्य के रूप में नहीं लेना चाहिए । परन्तु इसके माध्यम से जैनेन्द्र ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि जब पुरुषवादी समाज ने नारी के लिए आर्थिक स्वतंत्रता के सारे दरवाजे बन्द कर रखे हैं तो अंत में यही एकमात्र उपाय बचता है और इसे नारी चुनौती के रूप में स्वीकार करती है । वह अब पुरुष के पैरों की दासी बनकर नहीं रह सकती । भले ही इसके लिए उसे बड़ी से बड़ी कीमत चुकानी पड़ी ।

मृणाल को वह सब कतई मंजूर नहीं, जिसके चलते नारी के ऊपर जोर जबर्दस्ती का राज्य कायम होता है । वह अपने को दूसरे के अनुरूप ढालना बिलकुल पसंद नहीं करती है, चाहे इसमें उसका बड़ेसे बड़ा फायदा क्यों न होता हो । वह कठिन परिस्थितियों में नर्स की नौकरी छोड़ देती है क्योंकि नर्स बनने की जो शर्त है वह `मृणाल` के व्यक्तित्व के सर्वथा विपरीत है । शर्त यह है कि `बच्चा मिशन को दे दो और तुम भी ईसा मसीह को मान लो ।`[24] पर मृणाल इस तरह की शर्त मंजूर नहीं करती है । इसलिए वह धर्म परिवर्तन नहीं करती है । वह स्वयं अस्पताल छोड़ कर चली जाती है । यह सामाजिक मुक्ति का एक पहलू है ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नारी के लिए जो लम्बे-चौड़े मानदण्ड निर्धारित हैं, उन्हीं को `त्यागपत्र` की नायिका मृणाल तोड़ने का बराबर

प्रयास करती है, हालांकि इस प्रयास में वह स्वयं टूट जाती है । इसीलिए मृणाल का यही संघर्ष नारी समुदाय के लिए एक रास्ता बन जाता है ।

(सामाजिक मुक्ति का एक रूप `त्यागपत्र` की नायिका मृणाल के चरित्र द्वारा उभर कर सामने आता है जिसे वह वेश्या के रूप में स्वीकार करती है । जिस `सड़ांध` में मृणाल आश्रय ग्रहण करती है वहाँ पर निम्न और निकृष्ट वर्ग के लोग रहते हैं । इस परिस्थिति से मृणाल का भतीजा प्रमोद उबारना चाहता है । परन्तु मृणाल उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है क्योंकि वह अपना उद्धार नहीं चाहती, बल्कि वह सब का उद्धार चाहती है । इसीलिए वह तर्क देते हुए अपने भतीजे प्रमोद से कहती है -

> `प्रमोद तुमने महाभारत पढ़ा है । युधिष्ठिर जी स्वर्ग गए तो कुत्ते को नहीं छोड़ गए थे । यह बता, तेरा घर कितना बड़ा है - इन सब को ले चलेगा ? ये कुत्ते नहीं हैं, और इनका मुझ पर बड़ा उपकार है ।`[25]

विचार स्वातन्त्र्य और उसके लिए संघर्ष मृणाल के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है । यही विशेषता नारीवादी आन्दोलन का सोपान हो सकती है ।)

0

---

1. (सं0) लाल बहादुर वर्मा - `इतिहास-बोध`, पृ0 3 , अंक 21/1996
2. आशापूर्णा देवी - (ले0) `प्रथम प्रतिश्रुति`, जनसत्ता, 16 जुलाई 1995
3. अमल राय, मोहित भट्टाचार्य - राजनीतिक सिद्धांत : विचार एवं संस्थाएं (हिन्दी अनुवाद), पृ0 288
4. वही, पृ0 289
5. वही, पृ0 288
6. डा0 प्रभा खेतान - (अ0) स्त्री : उपेक्षिता, पृ0121
7. प्रभा खेतान -`छिन्नमस्ता`, पृ0 146

8. प्रभा खेतान - (अ०) स्त्री: उपेक्षिता, पृ 177
9. प्रभा खेतान - `छिन्नमस्ता`, पृ0 12
10. गीतांजलिश्री - `माई `, पृ0 53-54
11. (सं0) लाल बहादुर वर्मा - `इतिहास-बोध`, उद्धृत महेश्वर की कविता, आवरण पृष्ठ अंक 21/1996
12. जैनेन्द्र कुमार - `त्यागपत्र`, पृ0 13
13. डा0 विमल सहसबुद्धे - `हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण`, पृ0 231
14. जैनेन्द्र कुमार - `त्यागपत्र`, पृ0 29
15. वही, पृ0 54
16. वही, पृ0 54
17. वही, पृ0 54
18. डा0 बलराज सिंह - `उपन्यासकार जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, पृ0 186
19. जैनेन्द्र कुमार - `त्याग पत्र`, पृ0 58
20. वही, पृ0 57-58
21. मंजुलता सिंह - `हिन्दी उपन्यासों में मध्य वर्ग`, पृ0 191
22. जनेन्द्र कुमार - `त्यागपत्र`, पृ0 67
23. वही, पृ0 53
24. वही, पृ0 67
25. वही, पृ0 81

तीसरा अध्याय

'त्यागपत्र' में पारिवारिक जीवन और नारी

(क) पति-पत्नी का द्वन्द्व

(ख) सन्तान और माता-पिता के बीच द्वन्द्व

`त्यागपत्र` में पारिवारिक जीवन और नारी

(क) पति-पत्नी का द्वन्द्व

पति-पत्नी के सम्बन्ध को केवल एक वैवाहिक समझौता ही नहीं, बल्कि नैतिक, सामाजिक बंधन और कर्तव्य माना जाता है। इस सामाजिक नैतिक बंधन को संतुलित ढंग से निभाने के लिए जितना पति जिम्मेदार है, उससे कम पत्नी नहीं है। इसलिए दोनों में से यदि कोई अपने कर्तव्यों से मुकरता है तो पारिवारिक बिखराव की स्थिति उत्पन्न होती है, जो केवल उसके व्यक्तिगत जीवन को ही नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन को भी कटुता से भर देती है। पति-पत्नी के बीच का सम्बन्ध समरसता और संतुलन का होता है। अतः यदि उनके बीच द्वन्द्व की स्थिति पायी जाती है, तो वह पारिवारिक बिखराव का खुलासा कर देती है।

जब एक ही समय में व्यक्ति के अन्तर्मन में एक साथ दो विरोधी इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं (जिनकी पूर्ति सम्भव न हो) तो तनाव और मानसिक विचलन की स्थिति होती है। वही द्वन्द्व है। यह द्वन्द्व जैनेन्द्र के उपन्यासों में कुछ ज्यादा ही उभर कर आया है, क्योंकि वे समाज और पात्रों के बीच ऐसी परिस्थितियों का जाल बिछा देते हैं, जिसमें पात्र कहीं न कहीं अवश्य उलझ जाता है। फिर भी इनके नारी पात्र इस द्वन्द्व के सर्वाधिक शिकार दिखाई पड़ती हैं। कारण कि इनके नारी चरित्रों में अहंवादिता विशेष रूप से विद्यमान है। परिणामस्वरूप वह आन्तरिक अभावों की तुष्टि के लिए सहज नारी भूमिका से पृथक होते हुए भी एक अलग रास्ता तय करती है। उसकी यह अहं और स्वच्छन्द प्रवृत्ति ही उसे वैवाहिक बन्धन तोड़ने के लिए उकसाती है। यद्यपि `त्यागपत्र` की मृणाल के वैवाहिक जीवन के बिखराव का कारण उसकी स्वच्छन्दता से अधिक उसके

पति की शंकालु वृत्ति को रेखांकित किया गया है । मृणाल के पति-गृह-त्याग को उसकी मजबूरी करार दिया गया, फिर भी इस दोषारोपण से मृणाल भी नहीं बच सकती क्योंकि पति-पत्नी के बीच टकराव का जो कारण उभरता है, वह मृणाल का विवाह पूर्व प्रेम सम्बन्ध था ।

जैनेन्द्र ने औपन्यासिक चिन्तन के धरातल पर नारी-पुरुष की परस्परता में देह सम्बन्ध या काम सम्बन्ध को ज्यादा तरजीह दी है । इस विचारधारा के चलते उनके पात्रों द्वारा हर मर्यादा और आचरण संहिता को ठोकर लगाना आम बात है । इसलिए वे देह की आवश्यकता और उसकी पूर्ति में परस्पर आदान-प्रदान को अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं । तभी उनके नारी पात्र प्रेम और विवाह की सीमाओं में आबद्ध रहकर भी प्रेम सम्बन्धों को स्वीकार करते हैं । परन्तु `त्यागपत्र` के मृणाल की स्थिति कुछ दूसरी दिशा का संकेत करती है । इसमें मृणाल न तो पूर्ण रूप से एक सफल प्रेमिका ही बन पाती है और न ही वैवाहिक जीवन में सामंजस्य बिठा पाती है । उसकी स्थिति सामाजिकता की दृष्टि से बहुत कुछ अस्पष्ट है, जिसे यदि वेश्या नहीं कहा जा सकता है तो उससे कुछ ऊपर की स्थिति का भी दावा नहीं किया जा सकता है ।

`त्यागपत्र` में पति-पत्नी के रिश्तों में केवल दो ही जोड़े सामने आते हैं । एक तो प्रमोद के माता-पिता और दूसरे मृणाल और उसका पति । इन में प्रथम जोड़े के बीच कोई द्वन्द्व नहीं उभरता है । इतना अवश्य है कि दोनों में मतभेद है, परन्तु पति सामाजिक बन्धनों के डर से पत्नी के विचारों से समझौता कर लेता है । मृणाल और उसके पति के बीच का द्वन्द्व कुछ ज्यादा ही मुखर दिखाई पड़ता है । मृणाल केवल एक पति के साथ ही नहीं, बल्कि थोड़े-थोड़े समय के लिए दो-दो पतियों के साथ पत्नी की भूमिका में आता है, परन्तु वह दोनों जगह असफल और विद्रोही ही साबित होती है । दोनों जगह पर उसने पति को नहीं, बल्कि पति ने ही मृणाल को छोड़ दिया । इसके अलावा मृणाल की एक दूसरी भूमिका प्रेमिका की है, जिसमें भी वह सफल न हो सकी । उसके प्रेम

पर सामाजिक मर्यादा अधिक हावी हो जाने से वह केवल खण्डित प्रेमिका से कुछ अधिक न बन सकी । वह सामाजिक और पारिवारिक दबाव में एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति से विवाह तो कर लेती है, परन्तु उसके भीतर का मन अभी पूर्व प्रेम के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित है । फिर भी बीच-बीच में सामाजिक बन्धन और वैवाहिक पवित्रता का बोध उसे भीतर तक हिला देता है । उसकी यह स्थिति उस समय उभर कर सामने आती है, जब प्रमोद उसके प्रेमी के पास से पत्र लेकर वापस आता है --

'प्रमोद, अब तू वहाँ कभी मत जाना । तुझको जवाब लाने को किसने कहा था ? कभी किसी को कोई खत लाने की जरूरत नहीं है । समझा ?'

मैं कुछ भी नहीं समझा था ।

वह बोली -'इतना अनसमझ क्यों है प्रमोद । तू नहीं जानता कि मेरी शादी हो गई है ?'[1]

मृणाल यहाँ बराबर अन्तर्द्वन्द्व का शिकार है । एक तरफ वह पूर्व प्रेमी की तरफ आकर्षित होती है तो दूसरी तरफ पत्नीत्व का निर्वाह करने के लिए भी कटिबद्ध दिखती है । एक सच्ची पतिव्रता के भावावेग में प्रमोद से यकायक कह पड़ती है --

'देख प्रमोद, शीला के भाई का कोई पैगाम आया कि मैं छत से गिर कर मर जाऊँगी । मुझे उन्होंने क्या समझा है ?'[2]

मृणाल का यही अन्तर्द्वन्द्व उसे प्रेमिका और पत्नी दोनों ही भूमिका से अलग ऐसी विद्रोही की भूमिका प्रदान करता है जिसे समाज द्वारा कोई नाम नहीं दिया जा सकता है । इसी अन्तर्द्वन्द्व के कारण उसका वैवाहिक जीवन नष्ट हो जाता है । मृणाल पति-पत्नी के बीच संबंधों और विचारों का खुलापन चाहती है । वह जितनी ही स्वच्छन्द जीवन-दर्शन की समर्थक है, ठीक उसके विपरीत उसका पहला पति उतना ही रूढ़िवादी विचारों और संकीर्ण मानसिकता

का पोषक, जैसा कि उसके पति के कथन से स्पष्ट है -'आपने उन्हें समझा तो दिया ही होगा । ज़रा सेहत का ख्याल रखा करें । और दुनिया का भी लिहाज़ रखना चाहिए । आप जानिए, बहू-बेटियों की चलन की रीति-नीति हुआ करती है । अपने तो वही पुराने अक़ीदे हैं । अपना कुल-शील चला आता है, वह निभा तो फिर क्या रह गया । जरा ये बातें समझा देनी चाहिएं ।'[3]

मृणाल और उसके पति के बीच विचारों की इतनी बड़ी खाई सीधे-सीधे पारिवारिक विघटन की बुराइयों को उभार देती है । ये बुराइयाँ आज आधुनिक मध्यवर्गीय प्रत्येक परिवार के पति-पत्नी के रिश्तों के बीच दीमक का कार्य कर रही हैं । इसका कारण अनचाहे-अनजाने रिश्तों को एक साथ बल-पूर्वक बाँध कर धर्म और समाज के नाम पर विवाह जैसे पवित्र बन्धन के साथ निरन्तर किया जाने वाला बलात्कार है । इसका मुख्य प्रमाण न्यायालयों में भारी संख्या में आनेवाले तलाक के मुकदमे हैं । इसी वैचारिक मतभेद के और अधिक गाढ़े होने और पत्नी मृणाल के विवाहपूर्व प्रेम सम्बन्ध की जानकारी प्राप्त होने पर संकीर्ण मानसिकता वाले पति को और अधिक सह पाना दुष्कर लगा । इसका परिणाम मार-पीट कर मृणाल को घर से निकाल देने के रूप में सामने आया । यहाँ पति-पत्नी के बीच द्वन्द्व का कारण सामाजिक से अधिक व्यक्तिगत है, क्योंकि दोनों अपने-अपने स्वाभाविक मार्ग को छोड़ कर समझौतावादी रुख नहीं अपनाना चाहते हैं । अत: एक दृष्टि में यह द्वन्द्व अति रूढ़िवादी और अति प्रगतिशीलता के बीच है । मध्य का मार्ग दोनों को मान्य नहीं ।

पति-पत्नी के द्वन्द्व का एक रूप मृणाल और कोयले वाले के बीच उभर कर सामने आता है ।हालांकि इस रिश्ते को प्रेमी-प्रेमिका का भी रिश्ता कहा जा सकता है, परन्तु दोनों की यह निकटता पारस्परिक लगाव और प्रेम के कारण न होकर आवश्यकता और रूप लोभ के कारण थी । साथ ही मृणाल की भूमिका प्रेमिका की न होकर गृहिणी की अधिक दिखाई पड़ती है । अत: इसे पति-पत्नी

का ही रिश्ता कहा जा सकता है । यद्यपि मृणाल ने इस रिश्ते को स्वेच्छा से स्वीकार किया, फिर भी यह ज्यादा देर तक टिकाऊ नहीं था, क्योंकि इसका आधार पारस्परिक वैचारिक सामंजस्य न होकर पति का क्रूर लौंपीपन था । उसका मोहभंग एक न एक दिन होना ही था और वह हुआ भी । मृणाल को इस मोह भंग का आभास पहले से ही था - 'जानती थी, इसलिए मैं उसे साथ ले आई । वह बेरुखी का भाव अब शुरू हो गया है । अब उसे चले ही जाना चाहिए । परिवार उसका वहाँ अकेला है । मुझे वह नहीं झेल सकता। मेरी कोशिश है कि वह मुझसे उकता जाय । अपनी अवस्था में जानती हूँ, पेट में बालक है, लेकिन ऐसी अवस्था में भी स्वार्थ की बात सोचना ठीक नहीं है । मैं उसे उसके परिवार में लौटाकर ही मानूंगी ।'[4] फिर भी जो चीज़ इस रिश्ते को कुछ समय तक बरकरार रख सकी, वह मृणाल का अन्तर्द्वन्द्व था, जिससे वह पहले पति का घर छोड़ने के साथ तत्काल उचित निर्णय न ले सकी और एक शोषण से निकल कर दूसरी तरह के शोषण का शिकार हो गयी । इस शोषण से मुक्ति उसे तब मिली, जब उसने विवाह और परिवार बन्धन से अलग स्वतन्त्र मार्ग चुना ।

(ख) सन्तान और माता-पिता के बीच द्वन्द्व

जैनेन्द्र के उपन्यासों का विषय मुख्यत: पारिवारिक सम्बन्धों का विश्लेषण रहा है, जिसमें विशेषकर उन्होंने पति-पत्नी के सम्बन्ध-सूत्र के प्रत्येक आयाम को रेखांकित किया है । इस प्रक्रिया के चलते संतान और माता-पिता के बीच उभरने वाले द्वन्द्व भी खुलकर सामने आ गए हैं । आज के पारिवारिक सम्बन्धों में बिखराव का कारण माता-पिता और सन्तान के बीच निरन्तर बढ़ने वाला मतभेद है । यह मतभेद किसी विशेष परिवार तक सीमित नहीं है, बल्कि आज प्राय: सभी मध्यवर्गीय परिवारों की हालत एक जैसी है । इसका कारण समय के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन है, जिसके कारण नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी का द्वन्द्व अवश्यंभावी है । संतानें जिस परिवेश में पल रही हैं, उसमें पुराने सामाजिक नियम और परंपराएं निरन्तर दम तोड़ती जा

रही हैं । फिर भी माता-पिता द्वारा बार-बार उन पर थोपी जाने वाली सामाजिक मर्यादाओं से उनके प्रति संतानों की अनिच्छा और विद्रोह बढ़ता जाता है और एक समय ऐसा आता है, जब कि संतान अपने माता-पिता को ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण समाज के सामने चुनौती बनकर खड़ा हो जाती है । ऐसी स्थिति में वह विद्रोही संतान या तो समाज को तोड़ देती है या इस प्रक्रिया में खुद टूट जाती है । पर समाज की शक्ति अधिक होने और आत्म-बल की कमी होने पर व्यक्ति के ही टूट जाने की संभावना ज्यादा बनी रहती है ।

'त्यागपत्र' उपन्यास में दो विद्रोही चरित्र मृणाल और प्रमोद उभर कर सामने आते हैं । इनमें भी मृणाल का विद्रोह अधिक मात्रा में उभर कर सामने आता है ।

यद्यपि माँ-बाप के व्यवहार की असमानता, निर्भरता तथा भय के संघर्ष के कारण उपजने वाले पारिवारिक द्वन्द्व का रूप मृणाल में नहीं दिखाई देता है । प्रारम्भ में माता-पिता की मृत्यु के बाद मृणाल के भाई भी मृणाल को खूब स्वतन्त्रता दी । अत: इस समय द्वन्द्व उपजने का औचित्य ही नहीं था, परन्तु ज्यों-ज्यों मृणाल का क्रिया-कलाप प्रेम के क्षेत्र में बढ़ने लगता है, त्यों-त्यों पारिवारिक दमन प्रारम्भ हो जाता है ।

मृणाल की संरक्षिका उसकी भाभी पुरानी विचारधारा की नारी है । अत: उन्हें मृणाल का इस तरह स्वच्छन्द रूप से विचरण करना मान्य नहीं । वे मृणाल को परिवार और सामाजिक मर्यादाओं की कसौटी पर कसने का बराबर प्रयत्न करती हैं । इस प्रक्रिया में यदि आवश्यकता पड़ी तो वे उसे प्रत्यक्ष प्रताड़ित करने में भी नहीं झिझकती थीं । जैसा कि मृणाल के कथन से स्पष्ट है --

'पिता का स्नेह बिगाड़ न दे, इस बात का मेरी माता को खास ख्याल रहता था । वह अपने अनुशासन में सावधान थीं । मेरी बुआ को प्रेम

करती थीं, यह तो किसी हालत में नहीं कहा जा सकता । पर आर्य गृहिणी का जो उनके मन में आदर्श था, मेरी बुआ को वे ठीक उसी के अनुरूप ढालना चाहती थीं ।[5]

मृणाल और मृणाल की भाभी के बीच यह द्वन्द्व यहीं खत्म नहीं हो जाता, बल्कि वे मृणाल का विवाह भी उसकी इच्छा के विरुद्ध एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति से करा देती हैं । साथ ही मृणाल के ससुराल चली जाने पर वे उसकी खबर तक नहीं लेती थीं । मृणाल की भाभी अपने पति की इज्जत और मर्यादा के प्रति सचेत होकर मृणाल को बाल्यावस्था से ही अनुशासन में रखना चाहती थीं । उनको डर था कि मृणाल कहीं अपने भैया की इज्जत को बिगाड़ न दे । इसलिए वे बराबर इस बात के लिए सचेष्ट रहती थीं और मृणाल पर नजर रखती थीं । अब प्रश्न उठता है कि इस प्रकार का कड़ा अनुशासन क्या व्यक्ति और समाज के लिए आवश्यक है ? इसके लिए ठीक-ठीक दो टूक जवाब देना मुश्किल है परन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि कठोर अनुशासन में व्यक्ति के सामाजिक बनाने के बजाय विद्रोही बनने की संभावना अधिक रहती है, जिसका उदाहरण 'त्यागपत्र' की मृणाल है ।

यद्यपि मृणाल और उसके भैया भाभी के बीच का सम्बन्ध माता-पिता और सन्तान का नहीं है, फिर भी मृणाल के माँ-बाप न होने की वजह से दोनों की संरक्षक की भूमिका में होने के कारण उसके भैया-भाभी माता-पिता की ही भूमिका अदा करते हैं ।

मृणाल और उसके भैया के बीच में भी द्वन्द्व मुख्यत: मृणाल के प्रेम सम्बन्धों को लेकर है । जिस व्यक्ति ने अपनी बहन को बचपन से ही अगाध स्नेह और स्वतन्त्रता दी, वही आज इतना निष्ठुर हो गया कि परिवार की झूठी मर्यादा के लिए अपने बहन के प्रेम की बलि चढ़ा दी । यह द्वन्द्व सामाजिक मर्यादाओं के प्रति उत्कट लगाव के कारण उत्पन्न हुआ क्योंकि इसी अंधी सामाजिक मर्यादा ने उसे अपनी बहन की सुख-सुविधाओं का ख्याल तक नहीं आने

दिया । परिणामस्वरूप मृणाल के स्वच्छन्द प्रेम से खीझ कर उन्होंने मृणाल का विवाह एकअधेड़ उम्र के व्यक्ति के साथ कर दिया । मृणाल के भाई का यह अन्तर्द्वंद्व बाह्य नहीं है, बल्कि वह मृणाल की स्थिति के कारण अन्तर्द्वन्द्व में पला है । एक तरफ वह अपनी बहन को अत्यधिक प्यार करता है और दूसरी तरफ लोक-लाज के डर से उसे जबरन ससुराल भेज देता है । यद्यपि उसने अपनी पत्नी की तरह मार-पीट का सहारा नहीं लिया, फिर भी कूटनीति के द्वारा अपनी बहन की इच्छाओं का भरपूर दमन किया । वह मृणाल को समझाते हुए कहता है -'सुनो मृणाल, अभी भेजने की राय नहीं थी । तुम्हारी हालत नाजुक है । लेकिन तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूं ?'[6]

एक तरफ वह उससे सहानुभूति दिखाता है और वहीं दूसरी तरफ समझाने-बुझाने का रास्ता अपनाता है । परन्तु दोनों ही रास्ते अन्ततः मृणाल की इच्छाओं के दमन केलिए ही प्रयुक्त हुए हैं --

> 'पर पति के घर के अलावा स्त्री को और क्या आसरा है ? यह झूठ नहीं है मृणाल कि पत्नी का धर्म पति है । घर पति-गृह है । उसका धर्म, कर्म और उसका मोक्ष भी वही है । समझती तो हो बेटा।'[7]

इस प्रकार दोहरी दमनात्मक नीति से मृणाल विद्रोह कर बैठती है और पति का गृह छोड़ने के बाद लाख कठिनाइयाँ झेल लेती है परन्तु अपने मायके वापस नहीं आती है । इस घोर निराशा और लाचारी की स्थिति में प्रमोद ही उसका एक अपना सगा संबंधी है जिसे वह बहुत प्यार करती है । फिर भी वह घर चलने के प्रमोद के प्रस्ताव को ठुकरा देती है ।

माता-पिता और सन्तान के बीच द्वन्द्व का दूसरा सूत्र प्रमोद है । प्रमोद और उसके पिता के बीच किसी प्रकार का द्वन्द्व नहीं दिखाई पड़ता है । परन्तु प्रमोद और उसकी माँ के बीच यह द्वन्द्व अधिक उभर कर सामने आया है । फिर भी उसका विद्रोह उतना नहीं उभर सका जितना होना चाहिए था । कारण, मृणाल की विद्रोह चेतना की अधिक तीव्रता है । प्रमोद का अपनी माँ

और पिता के प्रति विद्रोह तब दिखाई पड़ता है जब वह बुआ को ससुराल जाने से रोकता है। वह अपने पिता और माता की इच्छा के विरुद्ध मृणाल का सदैव साथ देता है और बुआ को ससुराल जाने से रोकता है --

'मैंने अपनी समझ में जाने क्या कुछ समझकर कहा -'तो बुआ वहाँ जाने की कोई जरूरत नहीं - मैं नहीं जाने दूंगा।'

बुआ ने कहा -'भला किस ज़ोर से नहीं जाने देगा ?'

'बस कह दिया, नहीं जाने दूंगा।'[8]

प्रमोद के इस प्रकार का विद्रोह केवल 'स्व' के प्रति नहीं है, बल्कि 'पर' यानी अपनी बुआ के प्रति है। उसकी बुआ के ऊपर किया जाने वाला अत्याचार ही प्रमोद और उसकी माँ के बीच द्वन्द्व का कारण रहा। वह अपनी माँ द्वारा लाख मना किये जाने पर भी अपनी बुआ से मिलने जाता है। वह माँ की इच्छाओं के विरुद्ध बार-बार बुआ को घर आने का आग्रह करता है --

'मैंने कहा - 'तुम्हें पता है, मैं बीस बरस का हो रहा हूँ, बालिग हूँ। घर का मैं मालिक हूँ। माँ हैं, तो मेरी हैं। मैं तुम्हें यहाँ कैसे रहने दूँगा ?'

बुआ ने पूछा -'तो तू जरूर ले चलेगा ?'

'जरूर ले चलूँगा।'[9]

प्रमोद की माँ और उसकी बुआ के बीच निरन्तर बढ़ने वाले द्वन्द्व ने केवल उन दोनों के ही जीवन में कटुता नहीं घोली बल्कि उसका परोक्ष प्रभाव प्रमोद के सम्पूर्ण जीवन पर पड़ा जिसने प्रमोद के जीवन में भयंकर विष घोल दिया। परिणामस्वरूप प्रमोद जीवन भर अविवाहित रहने का संकल्प ले लेता है। इसी द्वन्द्व ने प्रमोद के जीवन में अन्तर्द्वन्द्व का समावेश कर दिया। वह बुआ की तरफ तो बढ़ता है परन्तु माँ का पूर्णतः साथ नहीं छोड़ पाता। अन्ततः उसने

जज के पद से त्यागपत्र दे दिया । उसके अपने शब्दों में --

> 'इसलिए आज जो असली तराजू है उसमें हल्का तुल रहा हूँ । आज इस सारी वकालत के पैसे और बुद्धिमत्ता की प्रतिष्ठा के ऊपर बैठ कर सोचता हूँ कि क्यों मुझ से तनिक सरल सामान्य नहीं बन गया? इस सब का अब मैं क्या करूँ जबकि समय रहते प्रेम के प्रतिदान से मैं चूक गया । यह सब मैल है जो मैंने बटोरा है । मैल की मेरी आत्मा की ज्योति को ढंक रहा है। मैं सब यह नहीं चाहता हूँ ।'[10]

इस प्रकार 'त्यागपत्र' उपन्यास में मृणाल और प्रमोद का अपने संरक्षक एवं माता-पिता के बीच उभरने वाला द्वन्द्व आज की पीढ़ी का द्वन्द्व है । नयी पीढ़ी पुरानी घिसी-पिटी परम्पराओं के बोझ को ढोना नहीं चाहती, बल्कि जो मान्यताएँ उसके मार्ग में रोड़ा हैं, उन्हें झटक कर एक पूर्ण मानव की भूमिका अदा करना चाहती है ।

0

---

1. जैनेन्द्र कुमार - त्यागपत्र, पृ० 21
2. वही, पृ० 22
3. वही, पृ० 35
4. वही, पृ० 57-58
5. वही, पृ० 10
6. वही, पृ० 29
7. वही, पृ० 28
8. वही, पृ० 26
9. वही, पृ० 49
10. वही, पृ० 83

चौथा अध्याय

'त्यागपत्र' में सामाजिक जीवन और नारी

1 - सामाजिक रूढ़ियाँ और नारी

2 - सामाजिक शोषण और नारी

3 - नारी जागरण

`त्यागपत्र` में सामाजिक जीवन और नारी

1 - सामाजिक रूढ़ियाँ और नारी

`रूढ़ि` उन सामाजिक रीतियों और परंपराओं को कहते हैं, जो समय के साथ अपना स्थान न बना सकने के कारण पीछे रह जाती हैं। फलत: वे सामाजिक प्रगति में बाधक की भूमिका निभाती हैं। ये सामाजिक रूढ़ियाँ मनुष्य के स्वतन्त्र विकास में ठहराव लाने की कोशिश करती हैं। परिणाम-स्वरूप प्रगतिशीलता और रूढ़ि के द्वन्द्व में व्यक्ति पीड़ा का अनुभव करता है, जिससे वह किसी एक निश्चित लक्ष्य की ओर न बढ़कर निरन्तर अन्तर्द्वन्द्व का शिकार होता है। इस प्रक्रिया में पुरुष और नारी दोनों ही हताहत होते हैं। फिर भी पुरुष को अपेक्षाकृत अधिक छूट होती है, क्योंकि सामाजिक व्यवस्था - निर्माण में उसकी मुख्य भूमिका होने के कारण उसने सारे नियम अपने पक्ष में बना रखे हैं। अत: जहाँ उसे आवश्यकता महसूस होती है, वह उसे आसानी से तोड़ कर अपने अनुरूप संशोधन कर लेता है, परन्तु नारी को पुरुष द्वारा बनाई गई उन्हीं परंपराओं को ढोना होता है। इनमें यदि पुरुष संशोधन भी करता है तो उन्हीं सीमाओं के भीतर जिनमें उसके स्वयं के अधिकारों पर आँच न आती हो। अत: यह दोहरी सामाजिक व्यवस्था नारी के लिए किसी बंधुआगीरी से कम नहीं है, जिसे उसको न चाहते हुए भी ढोना पड़ता है। ये रूढ़ियां एक प्रकार से पुरुष द्वारा नारी शोषण को वैधता प्रदान करती हैं। नारी होने के नाते जाति-धर्म, खान-पान, परिवार-समाज की इज्जत, मर्यादा का ध्यान रखना भी महिलाओं के ज़िम्मे ही अधिक होता है। पुरुष केलिए इन सामाजिक बन्धनों का उतना महत्व नहीं होता। अत: वह स्वतन्त्र रूपसे निर्णय लेने में सक्षम होता है। परन्तु यदि नारी इस थोपी हुई सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देती है तो समाज उसके लिए कुल्टा, बदचलन, चरित्रहीन, वेश्या और न जाने क्या-क्या विशेषण प्रदान करता है और उसे

उसी रास्ते से चलने को येन-केन-प्रकारेण विवश करता है जो समाज द्वारा निर्धारित है । `त्यागपत्र` उपन्यास में जैनेन्द्र ने नारी के इस शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने के साथ-साथ नारी शोषण के प्रति पुरुष के असली मन्तव्य को उजागर किया है ।

जैनेन्द्र ने `त्यागपत्र` में पुरुष द्वारा शोषण की उस कुटिल नीति पर चोट की है, जिसमें सामाजिक ढाँचे की दुहाई देने और दाम्पत्य जीवन के कल्याण की आड़ में विवाह और परिवार जैसी शोषण-संस्थाओं को वैधता प्रदान की जाती है ताकि नारी सदा के लिए पुरुष की उपभोग-वस्तु बनी रहे । उसे पुरुष कुछ छूट भी देता है तो नारी के कल्याण की दृष्टि से कम परन्तु स्वयं की सुविधा की दृष्टि से अधिक । इन परिवार और विवाह जैसी संस्थाओं के कारण नारी की स्वतन्त्रता निरन्तर बाधित होती रहती है । इसके चलते परिवार में नारी को इस ढंग से संस्कारित किया जाता है कि उनके भीतर यदि कोई प्रगतिशील भावना और विचार पनप रहा हो तो उसकी बाह्य अभिव्यक्ति न हो पाये । यह व्यवस्था केवल तात्कालिक ही नहीं होती, बल्कि इसके पीछे सैंकड़ों वर्षों से पुरुष की सोच और उपभोक्तावादी विचार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । यह बात केवल प्रेम के बारे में ही नहीं वरन् जीवन के किसी भी क्षेत्र में संवेदना को छिपाने के संदर्भ में उतनी ही सच है । जहाँ पुरुष के लिए प्रेम स्वच्छन्द और खुले रूप में सामाजिक मान्यता पाता है, वहीं स्त्री के लिए संयम और नैतिकता की दुहाई दी जाती है । यह भी मूलत: प्रवृत्तियों को दबाने वाली बात ही है । अगर कहीं स्त्री भावावेग और संयम का बाँध तोड़ कर बाहर निकलना चाहती है तो समाज उसे मान्यता नहीं देता, साथ ही साथ उसे मानसिक, नैतिक और सामाजिक स्तर पर प्रताड़ित भी किया जाता है । इसका अच्छा उदाहरण `त्यागपत्र` की नायिका मृणाल है, जो अपने स्वच्छन्द प्रेम के कारण अपनी भाभी द्वारा डण्डे से मार खाने के बाद अपने प्रेम के कड़ुए घूंट को पीजाती है । उसका प्रेम सदा के लिए मर जाता है । बीच-बीच में यदि

उसे उस पूर्व प्रेम की याद भी आती है तो सामाजिक प्रताड़ना और नैतिक मान्यताओं का भय उसे दबा देता है । मृणाल के प्रेम को कुण्ठित करने में जितना उसके भैया और भाभी का हाथ रहा है, उससे कहीं अधिक भूमिका सामाजिक रूढ़ियों और बन्धनों की रही । वैसे तो वाचाल होना सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नारी के लिए दोष समझा जाता है । प्रेम-प्रसंगों में यह स्थिति मनोवैज्ञानिक ही नहीं, बल्कि नैतिक दृष्टि से भी और अधिक महत्वपूर्ण है । कुछ ऐसी स्थिति `त्यागपत्र` की मृणाल की भी है । वह अपनी सहेली शीला के भाई से विद्यार्थी जीवन में ही प्रेम करने के साथ-साथ उसे पाने का भी प्रयत्न करती है । परन्तु इस तरह का आचरण परिवार और समाज में नारी के लिए कलंक माना जाता है । इसी सामाजिक रूढ़ि से ग्रस्त `मृणाल` का परिवार भी दिखाई पड़ता है । मृणाल के संरक्षक भैया और भाभी को इस प्रकार का मुक्त प्रेम और प्रेम-विवाह पसंद नहीं है । अत: मृणाल के इस प्रेम का पता लगते ही वे सामाजिक कलंक की इस बला से निजात पाने के लिए उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध जल्द ही कर देते हैं । यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जिस भैया ने मृणाल को बचपन से लेकर किशोरावस्था तक इतना प्यार दिया, उसकी इच्छाएँ पूरी कीं और उसे युवावस्था के पहले तक यथासम्भव स्वच्छन्दता दी, वे ही इतने निष्ठुर और मृणाल के प्रति कठोर कैसे हो गए ? उन्होंने उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध एक अधिक उम्र के व्यक्ति से क्यों कर दिया ? वे अपनी पत्नी का विरोध क्यों नहीं कर सके ? क्यों उन्होंने अपनी चहेती बहन के जीवन को नरक बना दिया ? क्यों उन्होंने मृणाल के पति गृह-गमन-विरोध को नहीं माना ? और क्यों मृणाल को जबरन पति के घर भेज दिया ? इन सारे प्रश्नों का उत्तर सामाजिक परंपराओं, नैतिक बन्धन और रूढ़ियों के प्रति आग्रह में निहित है । मृणाल के भैया मृणाल को मानते अवश्य हैं, परन्तु उनमें सामाजिक ढाँचे को तोड़ने की सामर्थ्य नहीं । इसलिए उन्होंने मृणाल को समझा-बुझाकर ससुराल भेजने के लिए राज़ी किया, न कि बल प्रयोग द्वारा ।

हमें उपन्यास में मृणाल का विवाह जिन परिस्थितियों में और जिस हड़बड़ी में होता हुआ दिखाई पड़ता है, वह प्राकृतिक नहीं बल्कि एक घटना जैसा लगता है । मृणाल के भैया और भाभी को यह डर था कि कहीं मृणाल अपने प्रेम के कारण कोई ग़लत कदम न उठा ले और फिर उन्हें समाज में कलंकित न होना पड़े । इसलिए उन्होंने समय के पहले ही मृणाल का विवाह करना उचित समझा ।

विवाह-संस्था के कारण भी नारी की स्वतन्त्रता बाधित होती है । विवाह-संस्था ऐसी रूढ़ि है जो अपनी उपादेयता विश्व के हर देश में किसी न किसी रूप में बरकरार रखती है । अगर कोई स्त्री इस थोपी हुई प्राचीन रूढ़ि को चुनौती देती है तो प्रतिक्रिया स्वरूप उसे समाज और परिवार द्वारा अपमान सहना पड़ता है । विवाह एक ऐसा कठोर सामाजिक रूढ़ि बंधन है कि उसे तोड़ना स्त्री के लिए आसान नहीं होता । यह सिर्फ दो व्यक्तियों के बीच का बन्धन नहीं, बल्कि परिवार और समाज के बीच का भी बन्धन है । प्रेमचन्द जी ने 'गोदान' उपन्यास में स्वीकार किया है कि -

'विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है, न स्त्री को ।'[1]

यद्यपि प्रेमचन्द जी के इस कथन में ऊपर से बहुत दम दिखाई पड़ता है, जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों की बराबर भागीदारी की वकालत की गयी है, तथापि गम्भीरता से देखने पर यह स्त्रियों के लिए केवल बन्धन है, जिसमें पुरुष बन्धे रहते हुए भी स्वतन्त्र है । किसी समझौते को चुनौती वही पड़ा देता है जिसको हानि उठानी पड़ती है । विवाह जैसे सामाजिक समझौते में पुरुष को ही सारे लाभ प्राप्त हैं । इसमें स्त्री के नैतिकता और सामाजिक ढांचे के नाम पर बंधुआ रखा गया है । इसलिए पुरुष इसे तोड़ेगा नहीं और स्त्री यदि इसे चुनौती देगी तो वह समाज को मान्य नहीं होगा । फलतः समाज स्त्री के विरुद्ध कड़ा

रुख अपनाएगा । इसलिए विवाह जैसे सामाजिक समझौते को दृढ़ बनाने के पीछे पुरुष वर्ग का अपना स्वार्थ निहित है जिस कारण वह इसकी अधिक वकालत करता है ।

'त्यागपत्र' में ही नहीं जैनेन्द्र ने अपने अन्य उपन्यासों में भी वैवाहिक जीवन और पारिवारिक जीवन को बार-बार चुनौती दी है । मृणाल स्वच्छन्द जीवन को स्वीकारते हुए वैवाहिक बन्धन को ध्वस्त करती है । वह पहले तो विवाह का विरोध नहीं करती परन्तु विवाह के चार दिन बाद बिना पति की इजाजत के ही मायके चली आती है । फिर वह दुबारा ससुराल न जाने की जिद पर अड़ जाती है । वह अन्ततः अपने भाई से साफ़ लहजे में कहने का साहस करती है कि -'कुछ भी बात नहीं है बाबूजी, पर मैं जाना नहीं चाहती हूँ ।' 'जाना नहीं चाहती हो ; यह तो मैं देखता हूँ । पर भला कहीं ऐसा होता है । और कब तक नहीं जाओगी ?' 'बिलकुल नहीं जाऊँगी ।'[2] इस संवाद में एक तरफ मृणाल का साफ़ इन्कार और दूसरी तरफ़ भाई का इस उत्तर पर आश्चर्यमिश्रित भयू दृष्टिगत है । उसके भैया का यह भय कुछ तो सामाजिक मर्यादाओं के डर से और कुछ मृणाल की धृष्टता से और अधिक गहरा हो जाता है । मृणाल ने वैवाहिक बन्धन तोड़ने के लिए क्या-क्या नहीं किया । ससुराल न जाने के लिए उसने तबियत खराब होने के बहाने हेतु जमालगोटा तक खा लिया । इस स्थिति की गम्भीरता को उपन्यासकार ने इस प्रकार से चित्रित किया है -- 'जमाल गोटा के सेवन से उनकी तबियत का जो हाल हुआ वह कहना वृथा है । माता-पिता दोनों चिन्तित हो गये । मैंने भय के मारे कुछ नहीं कहा । आशंका हो गई कि गर्भ न जाता रहे । वह तो न गया और सब कुछ हो गया ।'[3] मृणाल के इस प्रयास ने उसे ससुराल जाने से मुक्ति तो नहीं दिलाई, परन्तु कुछ दिन की मोहलत अवश्य दिलाई । विवाह के बाद मृणाल के इस तरह का कदम उसके स्वतन्त्र जीवन-यापन की इच्छा का प्रबल प्रमाण है ।

अब प्रश्न उठता है कि मृणाल की इस वैवाहिक बन्धन को नकारने की इच्छा कहाँ तक पूरी हो सकी ? 'त्यागपत्र' में जैनेन्द्र ने वैवाहिक बन्धन को तोड़ने का तो भरपूर प्रयास किया परन्तु उसका उचित समाधान वे नहीं दे सके । यह बात ठीक है कि विवाह नारी के लिए बन्धन और शोषण का कारण है । परन्तु इस बन्धन को तोड़ने के बाद समाज का अगला ढांचा क्या होगा ? उसे किस रूप में व्यवस्थित किया जायेगा और नारी पुरुष का सामंजस्य किस प्रकार बरकरार रखा जायेगा ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका समाधान जैनेन्द्र जी के पास नहीं है । साथ ही 'त्यागपत्र' उपन्यास में एक बात यह भी खटकती है कि मृणाल द्वारा वैवाहिक बन्धन तोड़ने के पीछे उसकी स्वच्छन्दता नहीं, बल्कि सामाजिक मजबूरी काम कर रही थी । उसने अपने पति से अपने पूर्व प्रेम की चर्चा की पर उसमें उसकी स्वच्छन्दता से कहीं अधिक उसकी भावुकता और पति-पत्नी के रिश्ते में पारदर्शिता लाने की नीति का विशेष महत्व था । उसकी स्वच्छन्दता इस बात में है कि वह अन्य स्त्रियों की तरह पति के द्वारा परित्याग कर दिए जाने पर मायके की आश्रिता बनकर जिल्लत भरी जिंदगी नहीं जीना चाहती, बल्कि वह स्वयं रास्ता तलाश करती है । परन्तु क्या मृणाल पूरी तरह से वैवाहिक बन्धन को नकारती है ? उपन्यास में ऐसा तो नहीं लगता, क्योंकि मृणाल पहली बार पति का घर छोड़ने के बाद दुबारा फिर कोयले वाले से विवाह करके गृहस्थी का काम करती है । मृणाल अन्ततः कोयले वाले से भी सम्बन्ध विच्छेद करके स्वतन्त्र जीवन-यापन करती है । परन्तु मृणाल की इस स्वतन्त्रता में मृणाल का नहीं, बल्कि कोयले वाले का हाथ था क्योंकि वही मृणाल को छोड़कर चला गया ।

इस प्रकार मृणाल न तो वैवाहिक जीवन को पूर्णतः छोड़ सकी और न स्वीकार कर सकी, बल्कि एक द्वन्द्व की स्थिति रही । इसका कारण कुछ तो मृणाल की तथाकथित आदर्शवादिता और कुछ उपन्यासकार की अपनी मान्यताएँ एवं सीमित विकल्प का होना है, जिसके चलते अन्ततः जैनेन्द्र ने भी वैवाहिक बन्धन को मान्यता दी है ।--

'विवाह की ग्रन्थि दो के बीच की ग्रन्थि नहीं है, वह समाज के बीच की भी है। चाहने से ही वह क्या टूटती है ? विवाह भावुकता का प्रश्न नहीं, व्यवस्था का प्रश्न है। वह प्रश्न क्या यों टाले टल सकता है ? वह गांठ है जो बंधी की सुल नहीं सकती, टूटे तो टूट भले ही जाए, लेकिन टूटना कब किस का श्रेयस्कर है ?'[4]

2 - सामाजिक शोषण और नारी

नारी जागरण की अवधारणा लगभग 19 वीं शती के नारी आन्दोलन की देन है। इसके पहले समाज में नारी शोषण को सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। अत: नारी जागरण जैसी किसी विचारधारा का होना असम्भव था। यद्यपि कभी-कभी प्रगतिशील विचारधारा के व्यक्तियों ने नारी अत्याचार के खिलाफ अवश्य आवाज उठाई, परन्तु वह किसी विचारधारा के स्तर पर प्रचारित नहीं हो सकी। नारी के शोषण में पूरी एक बनी-बनाई व्यवस्था का योगदान है, जिसके तहत हर क्षेत्र में एक समुचित ढंग से नारी शोषण को वैधता प्रदान की जाती है। शोषण की यह प्रक्रिया केवल वर्तमान युग की ही देन नहीं है, बल्कि प्राचीन काल से ही एक परम्परा रही है। आज भी सारी सत्ता, सारे मूल्य, सारी संस्थाएँ पुरुषों के हाथों में हैं। यद्यपि स्त्री को नाम मात्र को कुछ अधिकार भी दिये गए हैं, तथापि वे भी व्यावहारिक कम सैद्धांतिक और कागजी ही अधिक हैं। कहने को तो आज स्त्री और पुरुष को समान अधिकार प्राप्त हैं, परन्तु इन दोनों में बहुत बड़ा भेद कायम है। परिवार और समाज जहाँ पुरुष को स्वच्छन्द और उन्मुक्त जीवन-यापन की स्वीकृति देता है, वहीं नारी को सामाजिक बन्धनों के तहत आचरण करने को विवश किया जाता है। उसे अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास का कोई अधिकार नहीं है। उसकी पहचान आज भी समाज में उसके पति के नाम से मिसेज मिश्रा, मिसेज सिंह और मिसेज अग्रवाल आदि विशेषणों के साथ होती है। इसी तरह जिस पुत्र

को पैदा करने और लालन-पालन में उसकी सर्वाधिक भूमिका रहती है, उसका भी नाम पिता के वंश से जुड़ जाता है । साथ ही पुत्र के बड़े हो जाने के बाद उस पर से उसका अधिकार समाप्त हो जाता है । यहाँ तक कि पिता की यदि मृत्यु हो जाती है, तो कानून उसकी माँ को उसका संरक्षक मानने को तैयार नहीं होता है । अत: उसके संरक्षक के रूप में किसी चाचा या दादा आदि का नाम लिखाना आवश्यक होता है । यद्यपि अभी हाल में सुप्रीम कोर्ट ने प्रमाण-पत्र पर पिता के नाम के साथ माँ का नाम भी लिखाने की इजाजत दी है परन्तु व्यवहार में यह कितना कारगर होगा, आनेवाला समय ही बतायेगा ।

न्यायालय भी नारी-शोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि सारे कानून पुरुषों द्वारा ही बनाए गए हैं । अत: पुरुष पक्ष में अधिकारों का आवंटन स्वाभाविक है । अभी तक कानून भी वैवाहिक बन्धन समाप्त होने पर सन्तान पाने का अधिकार प्राय: पिता को ही देता है और माँ को उस के मातृत्व से वंचित कर दिया जाता है । उत्तराधिकार के नियम में पहले की अपेक्षा कुछ ढील अवश्य दी गई है परन्तु अभी भी पति की मृत्यु के पश्चात् पति की सम्पत्ति पर पत्नी की अपेक्षा पुत्र को ही अधिक अधिकार प्राप्त हैं । इसी प्रकार तलाक़ के परिप्रेक्ष्य में मुस्लिम महिलाओं को मुआवजे या गुज़ारे-दारी से पूर्णत: वंचित रखा गया है । यदि हिन्दू महिलाओं के लिए इसकी कुछ व्यवस्था की भी गई है, तो वह अपर्याप्त होने के कारण हास्यास्पद बन गयी है । साथ ही कानूनी प्रक्रिया इतनी जटिल होती है कि अधिक रूप से कमज़ोर मायके वाली स्त्रियाँ इसका दावा ही नहीं करतीं । यदि वे करती भी हैं तो सम्पन्न वर्ग वाले इतनी कम रक्म मुहैय्या करवाते हैं जो भिक्षा देने के बराबर होता है ।

समाज द्वारा नारी-शोषण का यह चक्र केवल किसी विशेष देश से ही सम्बन्धित नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण विश्व में नारी का शोषण लगभग एक-सा ही है । कुछ देश के निवासी स्वयं विदेशियों से शोषित रहे हैं, परन्तु ऐसा

नहीं कि उन्होंने नारी का शोषण नहीं किया । नारी शोषण की चर्चा करते हुए राकेश शर्मा `निशीथ` का कहना है कि --

> `पुरुषों के मुकाबले लड़कियों से भेदभाव करने की प्रवृत्ति प्राय: सभी देशों में बनी हुई है । स्त्रियों पर अनेक रूपों में अत्याचार हो रहा है, जिनमें से कुछ निम्न हैं - परिवार में शारीरिक, लैंगिक और मनोवैज्ञानिक हिंसा, दहेज़ से जुड़ी हिंसा, कामकाजी महिलाओं के साथ दफ्तरों, सड़कों, बसों आदि में छेड़खानी, दंगों और युद्ध की स्थितियों में स्त्रियों पर अत्याचार और बलात्कार, स्त्री कैदियों के साथ दुर्व्यवहार, शिक्षा और स्वास्थ्य के प्रति उपेक्षा, बलात् वेश्याकरण और जाने-अनजाने अन्य अनेक रूप । यहाँ तक कि कुछ अत्याचारों को तो धार्मिक और सामाजिक मान्यताएँ भी मिली हुई हैं ।`[5]

स्त्री-पुरुष के आपसी रिश्ते के बारे में इतना बड़ा फर्क यह जो आज देखने को मिलता है, वह समाज द्वारा ही निर्धारित है । समाज और परिवार में स्त्री के दोयम दर्जे के अधिकार प्राप्त हैं । अगर कोई नारी स्वतन्त्र रूप से किसी व्यक्ति से प्रेम करती है और उसे पानेकी क्षमता भी रखती है तो भी उसे ऐसा करने की इज़ाज़त समाज नहीं देता है । यहाँ तक कि विवाह जैसे स्थायी बन्धन में भी नारी स्वतन्त्र रूप से हस्तक्षेप नहीं कर सकती है । आज भी प्राय: नारी का विवाह पितृसत्तात्मक समाज में अभिभावक द्वारा ही निश्चित होता है । इसमें नारी की स्वीकृति और अस्वीकृति का कोई प्रश्न ही नहीं है । इस क्षेत्र में धीरे-धीरे नारी को कुछ स्वतन्त्रता अवश्य मिल रही है परन्तु यह धारणा थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ आज भी वर्तमान समाज में बरक़रार है । समाज द्वारा नारी के लिए निर्धारित इन सभी बन्धनों का शिकार `त्याग-पत्र` उपन्यास की नायिका मृणाल भी होती है और उसे भी पुरुष द्वारा निर्धारित सारे कुचक्रों से गुज़रना पड़ा है ।

'त्याग पत्र' उपन्यास में मृणाल के शोषण का पहला रूप उसके प्रेम क्षेत्र से प्रारंभ होता है, जिसमें समाज की कम परन्तु उसके अपने भैया और भाभी की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है। यद्यपि उपन्यासकार ने मृणाल के प्रेम की असफलता की सारी जिम्मेदारी उसके भैया और भाभी पर डाल दी परन्तु ध्यान से देखने पर इस असफलता में मृणाल की तथाकथित आदर्शवादी मानसिकता की भूमिका कम नहीं है। मृणाल ने जो साहस विवाह के बाद दिखाया, उसका यदि आधा भाग भी विवाह के पूर्व दिखाती तो उसका प्रेम निष्फल न जाता। मृणाल ने अपनी प्रगतिशीलता की ऊर्जा उस समय लगाई जबकि वक्त निकल गया था और कुछ पाने की बजाए अधिक खोने की संभावना थी और यही हुआ मृणाल के साथ भी। वह परिवार के शोषण से तो व्यक्तिगत प्रयासों से बच गयी परन्तु सामाजिक शोषण से खुद को बचाना उसके लिए आसान नहीं था। वह एक पति को तो ठोकर मार कर चली आयी थी या यों कहें कि मजबूरीवश विवाह-विच्छेद कर लिया परन्तु उसी जैसे दूसरे कुचक्र में आकर वह फँस गयी। कोयले वाले ने मृणाल के सौन्दर्य का भरपूर उपभोग किया परन्तु मृणाल का सौन्दर्य उसकी पुरुष लोभी प्रवृत्ति को ज़्यादा दिन तक तृप्त न कर सका। कोयले वाले द्वारा गर्भावस्था में मृणाल का साथ छोड़ देना पुरुषवादी शोषण का एक और अध्याय खोलता है जिसमें पुरुष नारी को उपभोग की वस्तु से अधिक कुछ भी मानने को तैयार नहीं दीखता। वह नारी के सौन्दर्य पर मर सकता है और सब कुछ लुटा सकता है परन्तु नारी के लिए उसके हृदय में ज़रा-सा भी स्थान नहीं है। सौन्दर्य का आकर्षण समाप्त होते ही नारी उसके लिए बेकार की वस्तु है। यही मृणाल के भी साथ होता है। यद्यपि मृणाल इस बात को पहले से ही जानती है, फिर भी उसके साथ दाम्पत्य जीवन स्वीकार करती है। नारी की अपनी कुछ मजबूरियाँ अवश्य हैं जिसके चलते वह बार-बार पुरुष द्वारा ठगी जाने के बाद भी आसानी से पुरुष की चाल में फँस जाती है।

नारी शोषण के लिए केवल पुरुष ही उत्तरदायी नहीं है, बल्कि नारी के शोषण में नारी भी विशेष भूमिका निभाती है। नारी की निरीह

स्थिति केवल उसके शोषित रूप में ही स्पष्ट होती है परन्तु जब वह शोषक की भूमिका में होती है तो पुरुष से कहीं अधिक क्रूर और उद्दण्ड रूप ले लेती है । इसका सटीक उदाहरण `त्यागपत्र` उपन्यास में मृणाल की भाभी की भूमिका है । उसे मृणाल का स्वच्छन्द चरित्र कदापि पसंद नहीं । मृणाल का प्रेम व्यापार मुणाल के भैया के लिए तो चिंता का विषय है, पर मृणाल की भाभी के लिए सामाजिक उच्छृंखलता और चुनौती का विषय है । अत: वह निर्दयतापूर्वक मृणाल की पिटाई करके कमरे में बंद कर देती है । मृणाल की इस दयनीय दशा का वर्णन प्रमोद इन शब्दों में करता है -- `उनकी साड़ी इधर-उधर हो गई है और बदन का कपड़ा बेहद मार से झीना हो गया है । जगह-जगह नील उभर आए हैं, कहीं लहू भी झलक आया है । बुआ गुमसुम पड़ी है ।`[6]

इतना ही नहीं, इस छोटी सी बात के लिए मृणाल को इतनी बड़ी सज़ा का कोई औचित्य नहीं दिखाई पड़ता है । उसकी पढ़ाई बंद करवा दी जाती है । उसका घर से बाहर निकलना भी बंद कर दिया जाता है, क्योंकि उसकी भाभी मृणाल को आदर्श गृहिणी के रूप में ढालना चाहती है जो मृणाल को मंजूर नहीं है । मृणाल के इस प्रकार के शोषण के पीछे कुछ तो उनकी भाभी की हठधर्मिता एवं कड़ा रवैया है और कुछ सामाजिक बन्धनों का दबाव है । इस के चलते मृणाल की सारी स्वतन्त्रताओं और उसके प्रेम का गलाघोंट दिया जाता है । उसका विवाह एक अधिक उम्र के व्यक्ति से कर दिया जाता है, जिसे वह मन मार कर स्वीकार तो कर लेती है परन्तु अधिक शोषण को बर्दाश्त करना मृणाल की क्षमता के बाहर की बात थी । अत: उसने पति का घर छोड़ कर अपना अलग रास्ता तय किया ।

हिन्दू समाज में विवाह एक स्थायी बन्धन माना जाता है परन्तु इस स्थायी बन्धन में भी नारी जबरन सहभागी बनायी जाती है । विवाह उसकी इच्छा तप्ति का नहीं बल्कि बन्धन का कारण बनता है, जिसे तोड़ने की हिम्मत उसको नहीं है । पुरुष को पत्नी के चुनाव का अधिकार समाज देता है, परन्तु वहीं स्त्री को पति के चयन से वंचित रखा जाता है । इन्हीं परिस्थितियों

से पीड़ित 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल है । वह अपने प्रेमी से विवाह नहीं कर पाती बल्कि सामाजिक विडम्बनाओं के चलते अनमेल विवाह की शिकार हो जाती है । जैसाकि मृणाल के पति के बारे में प्रमोद का कथन है --

> 'व्याह के वक्त मैंने अपने फूफा को देखा था । बड़ी-बड़ी मूछें थीं और उम्र ज़्यादा मालूम होती थी । डील-डौल में खासे थे । मुझे यह पीछे मालूम हुआ कि उनका यह दूसरा विवाह था । हमारी बुआ फूल सी थी ।'[7]

अनमेल और विधुर के साथ जबरन व्याह देने के बाद भी मृणाल उसका विरोध नहीं कर पाती है, बल्कि उसे अपने भाग्य की विडम्बना मानकर स्वीकार करती है । परन्तु इतना होने पर भी पुरुषवादी समाज उसे जीने नहीं देता । अन्ततः मृणाल के पति की मानसिक संकीर्णता के कारण उसे पति का घर छोड़कर चला जाना पड़ता है ।

विवाह के बाद जहाँ पुरुष का अपना घर बसता है, वहाँ माँ-बाप और परिवार की सारी सम्पत्ति पर उसका अधिकार हो जाता है, वहीं स्त्री को उससे बराबर वंचित होते जाना पड़ता है । विवाह के बाद उसका परिवार ही उसे बाहरी समझने लगता है । उसके स्वयं के परिवार से उसका अधिकार समाप्त हो जाता है । यदि ससुराल में उसे कुछ अधिकार मिले भी तो उस पर पति का पूर्ण नियन्त्रण रहता है । वह कोई कार्य पति की अनुमति के बिना नहीं कर सकती । ऐसे ही परायेपन का अनुभव करते हुए मृणाल भी कहती है कि -

> 'प्रमोद, सच्ची-सच्ची कहूँ तो मैं ही पराई हो गई हूँ । तुम सब लोगों के लिए मैं पराई हूँ । तेरी माँ ने मुझे धक्का देकर पराया बना दिया है । पर मुझे जहाँ भेज दिया है, प्रमोद, मेरा मन वहाँ का नहीं है ।'[8]

नारी शोषण को यह समाज किस रूप से वैधता प्रदान करता है, इसका अच्छा उदाहरण मृणाल के भैया और भाभी हैं । मृणाल के भैया, भाभी ने एक तो उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध अधेड़ व्यक्ति से कर दिया, दूसरे वे उसकी परेशानी सुनने के आदी नहीं दीखते । यदि मृणाल पति गृह जाने का विरोध भी करती है तो वे उसे पुनः उसी शोषण में पिसने के लिए मजबूर करते हैं, जैसा कि मृणाल के भैया का कथन है - 'वह आदमी भले हैं । इससे बात बन भी गई । नहीं तो बेटा ऐसा किया करते हैं ? थोड़ी-बहुत रगड़-झगड़ होती ही है । पर पति के घर के अलावा स्त्री को और क्या आसरा है ?'[9]

यह झूठ नहीं है कि मृणाल प्रारंभ में पति धर्म का निर्वाह करना चाहती है, परन्तु अन्याय की अति उसको विद्रोह करने के लिए बाध्य करती है, जिससे उसने वैवाहिक बन्धन को नकारकर स्वतन्त्र मार्ग का चुनाव किया । नारी शोषण का यह मीठा ज़हर आज भी नारी को बराबर दिया जा रहा है, जिस से विवाह और परिवार जैसी नारी-शोषण की संस्थाओं का अस्तित्व ख़तरे में न पड़ सके और पुरुष उसका अपनी आवश्यकता के अनुसार उपभोग कर सके ।

'त्यागपत्र' उपन्यास में नायिका मृणाल का पति द्वारा शोषण का रूप भी खुलकर सामने आता है, जो आज हमारे मध्यवर्गीय परिवार के दाम्पत्य जीवन की प्रमुख विशेषता है । मृणाल का पति परंपरागत रूप में पला-पुसा व्यक्ति है । वह अपनी पत्नी को आदर्श गृहिणी के रूप में देखना चाहता है । उसका कहना है कि - 'और दुनिया का भी लिहाज़ रखना चाहिए । आप जानिए, बहू-बेटियों की चलन की रीति-नीति हुआ करती है । अपने तो वही पुराने अक़ीदे हैं । अपना कुल-शील चला आता है, वह न निभा तो फिर क्या रह गया ।'[10]

यद्यपि ये विचार बड़े ही आदर्शवादी लगते हैं परन्तु यही वह हथियार है जिससे पुरुषवादी समाज चिरकाल से नारी का शोषण करता चला आया है । इसके पीछे पुरुष की कुटिल मंशा साफ़ ज़ाहिर हो जाती है ।

वह अपने लिए किसी भी मर्यादा को स्वीकार नहीं करता है । ऐसा ही चरित्र मृणाल के पति का है । वह मृणाल को बेवजह मारता है और मृणाल के द्वारा ईमानदारी से अपने पूर्व प्रेम सम्बन्धों का पर्दाफाश कर दिए जाने पर उसकी रूढ़िवादिता और संकीर्णता जवाब दे जाती है । अत: वह मृणाल को घर से निकाल देता है। यह हमारे समाज की विडंबना नहीं तो और क्या है कि एक पुरुष द्वारा विवाह पूर्व प्रेम समाज के लिए सामान्य सी बात है, परन्तु एक स्त्री के लिए यही स्थित विडंबना और कलंक का रूप ले लेती है । आज भी हमारे समाज में प्राय: अनेक पुरुषों को अपनी पत्नी के सामने बड़े गर्व के साथ अपनी पूर्व प्रेमिका का नाम लेते हुए सुना जा सकता है, परन्तु कोई भी पत्नी शायद ही कभी अपने पूर्व प्रेमी का नाम अपने पति को बताए । ऐसा करना उसके अस्तित्व केलिए ही खतरा बन सकता है । अत: वह चुपचाप दबे मन से पति के पूर्व प्रेम-सम्बन्धों को सुनकर केवल आहें भर सकती है । इससे ज़्यादा कुछ नहीं कर सकती । इसी परंपरा को मृणाल ने तोड़ा जिसका परिणाम उसे परित्यक्ता के रूप में भुगतना पड़ा ।

इस प्रकार नारी का शोषण पुरुष द्वारा कदम-कदम पर किया जाता है । वह उसे बार-बार बराबरी का दर्जा देने के बहाने भ्रमित करता रहता है और बार-बार अवसर मिलते ही नारी का भरपूर उपभोग करके बेकार की वस्तु मान कर फेंक देता है । यही हमारे समाज की विडम्बना है, जिसे जैनेन्द्र ने `त्यागपत्र` उपन्यास में मृणाल के माध्यम से व्यक्त किया है ।

3 - नारी जागरण

नारी जागरण की शुरुआत भारत में स्वतन्त्र आन्दोलन के रूप में नहीं हुई है, बल्कि उन्नीसवीं शती के समाज सुधार आन्दोलन तथा स्वतन्त्रता संघर्ष के महत्वपूर्ण और अनिवार्य हिस्से के रूप में हुई । समाज सुधार आन्दोलन ने उन्नीसवीं शती में अनेक नारी समस्याओं पर ध्यान दिया । नारी से संबंधित मुद्दे, अंग्रेज़ी शिक्षित बुद्धिजीवियों के लिए बहुत महत्वपूर्ण थे, क्योंकि समाज-

सुधारकों का यह वर्ग परंपरागत भारतीय समाज को बदलना चाहता था । पाश्चात्य विज्ञान, उदार शिक्षा तथा स्वतन्त्रता की भावना से प्रभावित होकर ये लोग तत्कालीन भारतीय समाज से सामाजिक कुरीतियों को मिटाना चाहते थे । उनके नारी संबंधी मुख्य मुद्दे सती, बाल-विधवा तथा बहु-विवाह की समस्या आदि थे । वे इन परंपराओं और संस्थाओं को न्यायिक सुधार तथा संगठन निर्माण के द्वारा बदलना चाहते थे ।

बंगाल में उन्नीसवीं शती में मध्यवर्गीय बुद्धि जीवी वर्ग के उदय पर पश्चिमी प्रभाव स्पष्ट और निश्चित है । राजा राममोहन राय द्वारा समाज धर्म तथा औरतों की स्थिति संबंधी प्रयासों को उन्नीसवीं शती के समाज सुधार अभियान की शुरुआत मान सकते हैं । सन् 1818 ई० से उन्होंने मानवीय और सामाजिक मूल्यों के आधार पर 'सती' का मुद्दा उठाया और इसके विरुद्ध जनता को जगाने की कोशिश की । उन्होंने सती प्रथा का विरोध करते हुए स्वयं कहा -- "किसी भी शास्त्र के अनुसार यह हत्या ही है ।"[1-1] सती प्रथा पर पूरी तरह से अंकुश लगाने संबंधी ऐतिहासिक कानून दिसम्बर सन् 1929 ई० में पारित हुआ और इसी साल उन्होंने ब्रह्म समाज नामक संस्था की स्थापना की । सन् 1850 ई० के शुरुआती दौर में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा विधवा विवाह का आन्दोलन प्रारंभ किया गया । उन्होंने तत्कालीन सरकार से भी इस संदर्भ में कानून बनाने की माँग की । राजा राममोहन राय और विद्यासागर के प्रयासों से सन् 1856 ई० में हिन्दू विधवा-पुनर्विवाह ऐक्ट पारित हुआ ।

बंगाल की तरह बम्बई ने भी पाश्चात्य विचार और संस्थाओं का अनुभव हासिल किया । सन् 1850 ई० के आसपास प्रचलित हिन्दू परंपराओं पर आघात प्रारंभ हो गए । गोपाल हरिदेशमुख ने पुरोहित व्यवस्था के खिलाफ सन् 1848 ई० में आवाज़ उठाई । ज्योति बा फूले ने 'सत्य शोधक' समाज की स्थापना की । उन्होंने औरतों और शूद्रों के लिए कार्य किया । सन् 1850 ई० में उन्होंने पूना में लड़कियों के लिए स्कूल की स्थापना की । डी. के. कर्वे ने

महिलाओं की दयनीय स्थिति सुधारने के लिए बहुत काम किया । विधवाओं के अधिकार तथा उनके 'वैध' या 'अवैध' बच्चों को बचाने के लिए कर्वे ने संघर्ष किया । उन्होंने स्त्रियों की शिक्षा के लिए सन् 1896 ई० में हिन्दू विधवा होम एसोसिएशन, सन् 1907 ई० में महिला विद्यालय तथा कर्वे महिला विद्यालय की स्थापना की ।।

महात्मा गांधी सन् 1915 ई० में भारत लौटे तथा उस समय देश आर्थिक तथा साम्प्रदायिक संकटों से ग्रस्त था । गांधी के प्रयास से महिलाओं ने घर से बाहर निकल कर सन् 1920 और सन् 1930 के राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय रूप से भाग लिया । यहाँ तक कि नारियों ने आजीवन खद्दर पहनने की शपथ ली थी और जुलूसों में साहसपूर्वक भाग लेकर वे जेल भी गईं । सरकार के साथ महिलाओं के संघर्ष ने यह विश्वास पैदा किया कि राष्ट्रीय संघर्ष और स्त्री मुक्ति का संघर्ष एक साथ होगा । जहाँ सामाजिक सुधार आन्दोलन ने कई दशकों में कुछ हासिल किया, उससे कई गुना अधिक गांधी के आन्दोलनों ने कुछ ही वर्षों में हासिल कर लिया । नारी की इस मानवीय संवेदना को देख कर उस समय की जनता भी चकित हो रही थी ।

19 वीं शती के इस नारी जागरण का प्रभाव जैनेन्द्र के उपन्यासों में भी देखा जाता है । इनके नारी जागरण में समग्रता की अपेक्षा वैयक्तिकता की ही प्रधानता रही । यद्यपि नारी जागरण का यह प्रयास व्यक्तिगत तौर पर ही अधिकांशत: इसके उपन्यासों में दीखता है परन्तु उसका प्रभाव और संदेश सामूहिक एवं समग्र नारी जागरण का होता है । जैनेन्द्र के पूर्व प्रेमचन्द युग के लगभग सभी लेखकों ने अपने उपन्यासों में किसी न किसी रूप में नारी जागरण को उभारा है । परन्तु जैनेन्द्र का नारी जागरण अन्य पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से इस अर्थ में थोड़ा हटकर है कि उन्होंने नारी मुक्ति के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक और वैयक्तिक पहलुओं पर अधिक बल दिया । वे नारी की निहित शक्ति को उपन्यासों के माध्यम से प्रत्यक्ष करना चाहते थे । वे चाहते थे कि भारतीय नारी पुरुष के समान ही देश-भक्त बने । उसकी सामाजिक और राजनीतिक

चेतना एवं उसमें अपने अधिकारों के लिए संघर्ष की भावना विकसित हो । अपने पर किये गए अत्याचारों के प्रति वह मूक दर्शक की भूमिका न अदा करे बल्कि उसका वह सक्रिय प्रतिरोध करे । उनके मत में नारी के मन, बुद्धि और व्यक्तित्व के विकास का यही सर्वोत्तम मार्ग था । इसलिए जैनेन्द्र जी ने सर्वप्रथम `परख` उपन्यास में बाल-विधवा नारी जीवन को इतने मार्मिक ढंग से व्यक्त किया है ।

नारी जागरण का प्रखर रूप जैनेन्द्र जी के उपन्यास `परख` में बाल-विधवा के रूप में प्रकट होता है । इसकी नायिका कट्टो द्वारा नारी जागरण का एक रूप सामाजिक रूढ़ियों के विध्वंसक के रूप में उभरता है । वह बाल विधवा नारी होने पर भी सत्यधन से प्रेम करती है और उसे पाने की इच्छा भी रखती है । वह प्रेम के इस मनोवैज्ञानिक प्रभाव से स्वयं को विवाहित भी अनुभव करने लगती है, यहाँ तक कि मेले से वह सिंदूर और अन्य शृंगार की सामग्री भी खरीद लाती है । कट्टो का यह साहस उस युग में बहुत बड़ी बात थी । जहाँ विधवा के लिए पराये पुरुष को देखना भी पाप समझा जाता था वहीं कट्टो का इस प्रकार खुले आम प्रेम और `सिंदूर` एवं शृंगार सामग्री का खरीदना तत्कालीन समाज को कड़ी चुनौती थी । कट्टो ने समाज को कड़ी चुनौती तो दी परन्तु सामाजिक प्रतिरोध के सामने वह ज़्यादा देर तक टिक न सकी और जल्द ही हार मान बैठी । ऐसा केवल कट्टो के ही साथ नहीं होता है, बल्कि जैनेन्द्र के अन्य उपन्यासों में उनके पात्र जिस संघर्षशील उद्देश्य को लेकर चलते हैं, उसमें वे पूर्णत: सफल नहीं हो पाते । इसका कारण स्वयं जैनेन्द्र जी का अन्तर्द्वन्द्व है । उनके पात्र सामाजिक रूढ़ियों को तो तोड़ते हैं परन्तु वैयक्तिकता से जल्द ही ऊब जाते हैं । फलत: वे पुन: समाज की ओर बढ़ने का मन बना लेते हैं ।

जैनेन्द्र जी के नारी जागरण का यही रूप `त्यागपत्र` में उभर कर सामने आया है । यद्यपि हमने दूसरे अध्याय में नारी जागरण के प्रश्न का सामाजिक

मुक्ति और वैयक्तिक मुक्ति के संदर्भ में उल्लेख किया है, फिर भी कुछ अन्य महत्वपूर्ण बिन्दुओं को पुन: उभारने का प्रयास इस प्रसंग में करना आवश्यक है ।

'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल के चरित्र द्वारा नारी जागरण का रूप विवाह के बाद ही उभर कर सामने आता है । विवाह होने तक मृणाल में आदर्शवादिता का दबाव था परन्तु विवाह के बाद सामाजिक परिस्थितियों से सीधा टकराव हुआ, जिसमें उसने आदर्श की अपेक्षा यथार्थ को स्वीकार किया। शुरू में मृणाल अपनी इच्छाओं को दबा कर अपने स्वप्नों को बर्बाद करके एक भारतीय नारी के आदर्शानुकूल पति के अनुसार जीना चाहती थी । उसने वैवाहिक जीवन में पारदर्शिता की जिस नीति का सहारा लिया, वह उसी के लिए घातक साबित हुई । फलत: उसे पति की संकीर्ण मानसिकता के चलते वैवाहिक जीवन त्यागना पड़ा। मृणाल की आदर्शवादिता को उस समय गम्भीर ठेस लगी, जबकि उसके पति ने उसका परित्याग कर दिया । फलत: उसने उग्र यथार्थ का सहारा लेते हुए पति का गृह सदा के लिए छोड़ दिया । उसने पति का ही नहीं, बल्कि स्वयं अपने भैया - भाभी का भी घर छोड़ दिया और दर-दर की ठोकरें खाते हुए संघर्ष का रास्ता चुना । वह अपने मैके जाकर पुन: उसी सामाजिक व्यवस्था का शिकार नहीं होना चाहती थी, जिसने उसे सदा ही बंधक बना रखा था । वह आश्रिता नहीं, बल्कि स्व अर्जिता का जीवन बिताना चाहती थी । मृणाल ने एक साथ दो-दो क्षेत्रों में चुनौती दी । एक तो वैवाहिक जीवन को नकार कर सामाजिक व्यवस्था को चुनौती दी और दूसरे मैके का आश्रय छोड़ कर पुरुषवादी आर्थिक व्यवस्था की अधीनता मानने से इनकार कर दिया । इतना ही नहीं , यदि एक ओर मृणाल ने कोयले वाले से विवाह करके जाति व्यवस्था की मान्यताओं को अमान्य कर दिया तो दूसरी ओर नर्स की नौकरी को ठुकराकर धार्मिक शोषण की प्रवृत्ति को प्रभावहीन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

आर्थिक क्षेत्र में नारी जागरण के जैनेन्द्र बहुत अधिक पक्षधर नहीं दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि इसमें मृणाल का जो रूप उभरा है, वह आर्थिक दृष्टि से बहुत ही कमजोर है, जिससे वह बार-बार पुरुषवादी शोषण का शिकार होती है । यद्यपि उपन्यासकार ने कोयले वाले से मृणाल के विवाह का कारण कृतज्ञता बताया परन्तु उसका एक पहलू आर्थिक भी था । मृणाल ने उसकी सहायता तब स्वीकार की जबकि वह पूर्ण रूप से निराश्रित थी । जीविकोपार्जन हेतु मृणाल का आधार बहुत ही कमज़ोर है । वह पहले `नर्स ` की नौकरी करना चाहती है, परन्तु ईसाई धर्म ग्रहण करने की शर्त ने उसे विचलित कर दिया । इसके बाद वह ट्यूशन पढ़ाने का काम करती है, परन्तु भाग्य ने वहाँ भी उसका साथ नहीं दिया और उसे अपने भतीजे के सम्मान हेतु यह कार्य भी छोड़ना पड़ा । अंतत: वह जीविकोपार्जन का जो साधन अपनाती है, इसका स्पष्ट संकेत उपन्यासकार ने नहीं दिया । इस आर्थिक जागरण के अभाव में नारी जागरण के सारे प्रयास धूमिल हो जाते हैं ।

`त्यागपत्र` में नारी जागरण का एक रूप `नारी विरोध` की मुखर अभिव्यक्ति के रूप में उभर कर सामने आता है । जहाँ नारी परिवार के अन्य सदस्यों से प्रताड़ित होने के बाद भी मुँह नहीं खोलती थी, वहीं मृणाल पति के घर जाने से साफ-साफ इनकार कर देती है । जो नारी अपनी ससुराल की प्रताड़ना को मैके में बताना अपना अपमान समझती थी, वही आज अपने भतीजे को पूरी दास्तान बताती है । यह सही है कि वह अपने भैया और भाभी से उसे छिपाती है, केवल इसलिए कि कोई फायदा नहीं होगा परन्तु अपने भतीजे प्रमोद से बताने में उसको कोई झिझक नहीं है --

> `प्रमोद किसी और से नहीं कहा, तुझे कहती हूँ । बेत खाना मुझे अच्छा नहीं लगता । न यहाँ अच्छा लगता है, न वहाँ अच्छा लगता है ।`[12]

`त्यागपत्र` में नारी जागरण का एक रूप विचारों की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति में भी है । पहले जहाँ नारी अपनी उमंग और उल्लास एवं विषाद को चुप-चाप अकेले सहती थी, बहुत अधिक हुआ तो अपनी सखी के साथ दु:ख-सुख बांट लिया करती थी, वहां मृणाल एक विपरीत लिंगी भतीजे प्रमोद के साथ अपना सारा दु:ख-सुख बाँटती है । यहाँ तक कि वह अपनी कामोत्तेजनाओं को भी प्रमोद पर प्रकट कर देती है, भले ही एक मर्यादा के भीतर ऐसा किया गया हो ।

इस प्रकार `त्यागपत्र` उपन्यास में मुख्य रूप से वैयक्तिक नारी जागरण उभर कर सामने आया है जिसका लक्ष्य भले ही सामाजिक हो परन्तु वह बहुत कुछ दबा-दबा सा है । साथ ही आर्थिक मुक्ति की चेतना वहाँ बहुत कमज़ोर है। इतना ही नहीं, नारी की राजनीतिक मुक्ति का कोई पहलू इस उपन्यास में नहीं दिखाई पड़ता है, जो कि वर्तमान युग के नारी जागरण का विशेष प्रश्न है । इसका कारण जैनेन्द्र जी का मनोवैज्ञानिक आग्रह ही रहा है, जिससे राजनीतिक और आर्थिक जागरण का पक्ष दब गया । अत: त्यागपत्र के इस नारी जागरण को सम्पूर्ण नारी जागरण की संज्ञा नहीं दी जा सकती है । इसे वैयक्तिक मुक्ति का प्रयास कहना अधिक उपयुक्त होगा ।

0

---

1. प्रेमचन्द - गोदान, पृ0 63
2. जैनेन्द्र कुमार - त्यागपत्र, पृ0 29
3. वही, पृ0 32
4. वही, पृ0 26
5. राकेश शर्मा `निशीथ` - `विश्व में स्त्रियों की दयनीय दशा व दिशा` (लेख) `हम दलित`, अगस्त 1996,पृ0 34

6. जैनेन्द्र कुमार - त्यागपत्र, पृ0 15
7. वही, पृ0 18
8. वही, पृ0 19
9. वही, पृ0 28
10. वही, पृ0 35
11. बिपिन चन्द्र - 'भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष', उद्धृत, पृ0 54
12. जैनेन्द्र कुमार - त्यागपत्र, पृ0 27

0

पाँचवाँ अध्याय

'त्यागपत्र' में मुख्य नारी चरित्र और उनका मनोविज्ञान

'त्यागपत्र' में मुख्य नारी चरित्र और उनका मनोविज्ञान

जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में व्यक्ति-मन के सूक्ष्म तन्तुओं को, खास कर नारी-मन की उथल-पुथल, स्त्री-पुरुष के आकर्षण-विकर्षण के साथ-साथ काम-भाव की समस्याओं को गहराई से देखने और समझने की प्रक्रिया का प्रारंभ किया । इसके साथ ही उन्होंने मन की इन आन्तरिक क्रियाओं के बाह्य जगत पर पड़ने वाले प्रभावों के परिणामस्वरूप नारी की वैयक्तिक और आन्तरिक स्वतंत्रताओं को जीवन के अनेक कोणों से देखने का भी प्रयास किया । इनका नारी मनोविज्ञान कोरा कोई वाग्जाल नहीं, बल्कि इसके द्वारा वे अपने नारी पात्रों के जीवन को एक दशा-दिशा प्रदान करते हैं ।

यद्यपि इनके उपन्यास में प्राय: कौमार्यावस्था से लेकर यौनावस्था की ही मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों को अधिक रंग दिया गया है, फिर भी बाल्यावस्था के चित्र आवश्यकतानुसार उभर कर आए हैं, जो आगे की पृष्ठभूमि तैयार करते दीखते हैं । विद्यार्थी जीवन एक ऐसा समय होता है जब व्यक्ति समाज की विषमताओं और उसके संघर्ष से दूर अपने सपनों की दुनिया में खोया रहता है । यही वह काल है जब व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रस्फुटन प्रारंभ होता है । इसीलिए जैनेन्द्र ने 'त्यागपत्र' की नायिका मृणाल के मनोवैज्ञानिक सूत्र को उभारने के लिए उसके विद्यार्थी जीवन के नटखट अंदाज भरी शरारत की घटना को चुना है, जो एक साथ उसके व्यक्तित्व में छिपी नटखटता, चंचलता, सरलता और साहसिकता को उभार देती है । मृणाल स्कूल में की गई इस शरारत का वर्णन करती हुई प्रमोद के साथ आनंदातिरेक में उभ-चूभ हो उठती है - 'आज मास्टर जी को ऐसा छकाया, कि प्रमोद, तुझे क्या बताऊँ - प्रमोद, वह है नहीं गणित के मास्टर, शीला ने उनकी कुर्सी की गद्दी में पिन चुभो कर रख दी, शीला बड़ी नटखट है... मास्टर ने कैसे फटकार कर कहा - मैं तुममें

से एक-एक को पीटूँगा । सचमुच उनको बहुत गुस्सा था । उनका गुस्सा देख कर सब लड़कियां एक दूसरे की तरफ देखने लगीं । यह मुझको बुरा लगा । मैंने खड़े होकर कहा - यह मेरा क़सूर है, मास्टर जी । मास्टर जी पहले तो मुझको देखते के देखते रहे... एक बार तो सचमुच का क़सूर करके देखूँगी ।'[1]

'त्यागपत्र' की मृणाल एक प्रखर तेजस्वी तथा ऊर्जावान नारी है, जो बचपन में ही माता-पिता की मृत्यु के कारण भाई और भाभी के सानिध्य में पलकर बड़ी हुई है । माँ-बाप की अनुपस्थिति और कुछ स्वयं के रूप लावण्य के कारण बचपन से वह भाई का अधिक प्यार प्राप्त करती है जिसने उसकी स्वच्छंदता और वैयक्तिकता की प्रवृत्ति को खुलकर पनपने की उचित ज़मीन प्रदान की । यही बचपन का लाड़-प्यार उसके स्वच्छंद प्रेम का कारण बनता है या यूँ कहें कि यह स्वच्छन्द प्रेम स्वयं जैनेन्द्र जी के विचारों का मूर्तिकरण है जो उनके अन्य उपन्यासों की नायिकाओं के चरित्र की कमजोरी के साथ-साथ उनकी संघर्ष क्षमता को भी बढ़ा देता है । मृणाल स्वच्छन्द रूप से प्रेम करना चाहती है । उसे चिड़ियों और पतंग की भांति मुक्त नभ में उड़ान भरने की चाहत है । अत: वह अपनी भावना प्रमोद से प्रकट कर देती है -

'मैं नहीं बुआ होना चाहती । बुआ ! छी: । देख, चिड़िया कितनी ऊंची उड़ जाती है । मैं चिड़िया होना चाहती हूं ।'
मैंने कहा - चिड़िया ?
बोली - हाँ, चिड़िया । उसके छोटे-छोटे पंख होते हैं । पंख खोल वह आसमान में जिधर चाहे, उड़ जाती है । क्यों रे, कैसी मौज है ! नन्ही-सी चिड़िया, नन्हीं सी पूंछ । मैं चिड़िया बनना चाहती हूँ ।'[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि 'त्यागपत्र' की मृणाल स्वतन्त्र रूप में जीना चाहती है । ऐसा उसने करके भी दिखाया । इसके लिए उसे समाज और स्वयं परिवार के कितने प्रवाद भी झेलने पड़े परन्तु उसने हार नहीं मानी । इसी भावना को वह चिड़ियों और पतंग के संकेत द्वारा व्यक्त करती है ।

इसी बात को यदि हम डा० विमल सहस्रबुद्धे के शब्दों में कहें तो --

'इस प्रकार उसके मन में मुक्ति के भाव हैं जो बार-बार उमड़ आते हैं, पर अस्थिर हैं। मन के भाव बताना चाहती है, शब्द होठों तक आते हैं, पर उन भावों को न बता कर प्रकृति की मुक्ति का चिड़िया के माध्यम से अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति का संकेत करती है।'[3]

मृणाल के स्वच्छन्द प्रेम को अनेक उद्धरणों में देखा जा सकता है। 'मृणाल' एक हद तक प्रमोद के प्रति भी आकर्षित है परन्तु सामाजिक बन्धन और 'उम्र' के लिहाज से वह उसे पूर्ण रूप से खुलकर नहीं व्यक्त कर पाती है। फिर भी इसका संकेत उपन्यासकार ने एक दो स्थानों पर किया है --

'प्रमोद, तू मुझे प्यार करता है? सुनकर बिना कुछ बोले मैंने अपना मुँह उनकी छाती के घोंसले में और दुबका लिया। इस पर वह बोली - प्रमोद, मैं तुम्हें बहुत प्यार करती हूँ।'[4]

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि मृणाल का आकर्षण प्रमोद के प्रति बराबर बना रहता है परन्तु यहाँ उपन्यासकार ने उसे इस रूप में प्रस्तुत किया है जिससे उसके एक साथ दो अर्थ निकलें। कि यहाँ मृणाल और प्रमोद में बुआ और भतीजे का रिश्ता है, अतः इस तरह से इसमें रिश्ते के सात्विक प्रेम की भी गुंजाइश बराबर बनी रहती है। परन्तु अनेक स्थानों पर मृणाल द्वारा बार-बार प्रमोद को अपने शरीर से चिपका लेना, बाहों में भर लेना आदि प्रसंग क्या इस मानसिक सेक्स-पूर्ति का एक बहाना नहीं है?

मृणाल के चरित्र को उपन्यास के प्रारंभिक हिस्से में जिस रूप में चित्रित किया गया है, उससे लगता है कि उपन्यासकार की दृष्टि चरित्र के उन विशेष तत्वों पर ही रही है जो उनके नारी पात्रों को स्वच्छन्द प्रेमिका बनाने में एक अहम् भूमिका अदा करता है । उन पात्रों का रूप-रंग, आकर्षण, व्यक्तित्व, उनके व्यवहार और प्रकृति की विशेष स्वच्छन्दतावादी वृत्तियां, उनके कार्य और प्रेरणाओं के अन्तस्थल में छिपी विशेष मनोग्रन्थियों और उनका इतना विशद चित्रण इसका सबूत है कि जैनेन्द्र मृणाल को भी इसी स्वच्छन्द प्रेम के भीतर कहीं न कहीं अवश्य फिट करना चाहते हैं ।

अब प्रश्न उठता है कि मृणाल का यह स्वच्छन्द प्रेम किस हद तक सफल रहा ? ध्यान देने पर पता चलता है कि इस स्वच्छन्द प्रेम के बीच में कुछ समय के लिए परिस्थितिवश ठहराव आ जाता है । यह ठहराव कुछ तो भैया और भाभी के दबाव के कारण और कुछ स्वयं के अन्तर्द्वन्द्व और आदर्शवादिता के कारण है । फिर भी अन्ततः मृणाल इन सभी सामाजिक बन्धनों को झटक कर झूठी मर्यादा को तिलांजलि दे देती है और फिर शुरू होती है यथार्थ और संघर्ष-पूर्ण ज़िंदगी की दुःखद भरी कहानी ।

मृणाल का विद्यार्थी जीवन में अपनी सहेली (शीला) के भाई (डाक्टर) से प्रेम हो जाता है जिसका रहस्य खुलने पर वह भाभी द्वारा प्रताड़ित भी होती है और साथ ही साथ शिक्षा भी बंद करवा दी जाती है । इन विपरीत परिस्थितियों में उसका यह प्रेम धीरे धीरे दम तोड़ देता है । वह विरोध करने की स्थिति में भी नहीं है । अन्ततः इसी के चलते मृणाल का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध अधिक उम्र वाले व्यक्ति से कर दिया जाता है, क्योंकि इस तरह का स्वच्छन्द प्रेम सामाजिक रूढ़ियों और पारिवारिक मान्यताओं को सीधे-सीधे चुनौती देता है । आज भी भारतीय समाज में खासकर मध्यवर्गीय परिवार में स्वच्छन्द प्रेम मान्य नहीं है । अगर कहीं ऐसा होता है तो अपवाद रूप में ही मिलता है । अतः समाज और पारिवारिक मर्यादा के भय से मृणाल के भैया-भाभी उसका विवाह शीघ्र ही एक अधेड़-उम्र के व्यक्ति से कर देते हैं ।

लेकिन मृणाल कोई विरोध नहीं जताती है । वह अपने प्रेम का गला घोंट कर उत्सर्ग की भावना दिखाती है । विवाह के पश्चात् वह अपने विगत जीवन को भुलाकर एक पत्नी का आदर्श निभाना चाहती है । अत: वह एक सच्ची पत्नी के धर्म के पालन हेतु अपने पूर्व प्रेम के बारे में पति को बता देती है । परन्तु इसका प्रभाव उलटा पड़ता है और पति अनैतिकता का आरोप लगाकर उसे छोड़ देता है । यहाँ भी मृणाल विद्रोह नहीं करती दीखती । इसका कारण एक तो स्वयं मृणाल का पति के प्रति कोई दिलचस्पी न होना और दूसरे अहंवादी स्वभाव के चलते खुद ज़िन्दगी के रास्ते तलाश करने की इच्छा है ।

इस विद्रोह की अनुपस्थिति के लिए किसी हद तक मृणाल की आदर्श-वादिता भी जिम्मेदार है । वह भारतीय आदर्श नारी की भांति सब कुछ चुपचाप सहन कर लेती है । वह अपने को टूटने से बचाने केलिए समाज को तोड़ना नहीं चाहती, जैसा कि उसका स्वयं का कथन है -'मैं समाज को तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहती हूँ । समाज टूटा कि फिर हम किसके भीतर बनेंगे ? या किसके भीतर बिगड़ेंगे ? इसलिए मैं इतना ही कर सकती हूं कि समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटती रहूं ।'[5]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि जो मृणाल समाज को तोड़ना नहीं चाहती, स्वयं इस प्रयास के चलते उसकी सारी मंगल कामना ध्वस्त हो जाती है । उस की प्रवृत्ति एक मध्यवर्गीय भारतीय नारी की तरह 'करुणा' की है । फिर भी उपन्यास में मृणाल की भूमिका क्या उसे एक साधारण मध्यवर्गीय नारी सिद्ध करती है ? नहीं, क्योंकि समाज के प्रति उसका विद्रोह, खुद रास्ता तलाश करने की कोशिश, परिवार और संबंधियों के आश्रय को ठुकरा कर अपने दम पर जीवन निर्वाह का प्रयास उसे कदापि मध्यवर्गीय भारतीय नारी का पूर्ण रूप नहीं होने देगा । उसमें आदर्शों और सच्चाई के प्रति निरन्तर अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है और अन्तत: सच्चाई और वास्तविकता की विजय

होती है । परिणामस्वरूप मृणाल जीवन में ठोस यथार्थ धरातल का वरण करती है ।

मृणाल के अन्तस्थल में एक प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व पलता रहता है । विवाह के बाद मैके आने पर एक बार उसका पूर्व प्रेम पुन: उसे विचलित कर देता है । वह अपने भतीजे प्रमोद द्वारा अपने प्रेमी (डाक्टर) को पत्र भेजती है परन्तु उस पत्र का उत्तर प्राप्त होने पर उसे उसका सतीत्व धिक्कार उठता है । वह अपने पति के प्रति बेवफाई की बात सोचकर कांप जाती है और लगभग चीख सी उठती है - 'अब तुं वहां कभी मत जाना । तुझ को जवाब लाने को किसने कहा था ? कभी किसी को कोई खत लाने की जरूरत नहीं है । समझा ?' मैं कुछ भी नहीं समझा था । वह बोली -'इतना अनसमझ क्यों है प्रमोद ! तू नहीं जानता कि मेरी शादी हो गई है ?' मैंने कहा - मैं जानता हूँ ।' बोलीं -'तू कुछ नहीं जानता । तू गधा है । मेरे दिल में आग लग रही है ।' मैं चुप था । 'तू जानता है दिल की आग क्या होती है ?' किसीदिल की आग को सचमुच मैं नहीं जानता था ।'[6]

मृणाल इस अन्तर्द्वन्द्व से उबर नहीं पाती है । एक ओर उसका ध्यान बार-बार अपने पूर्व प्रेमी की ओर खिंचता है तो दूसरी ओर अपने पति के प्रति भी वह वफादार बनी रहना चाहती है । प्रेमी की तरफ खिंचने के कारण वह अपने भाई से ससुराल न जाने की ज़िद करती है तो पति की ओर खिंचने पर आदर्श नारी की भूमिका में आने का प्रयास करती है । वह अपने प्रेमी को भूल जाना चाहती है । अत: वह प्रमोद से कहती है कि -'शीला के भाई का कोई पैगाम आया कि मैं छत से गिर कर मर जाऊँगी । मुझे उन्होंने क्या समझा है ?' ... 'जाकर यह शीला से कह देना । मैं सच कहती हूँ, मैं मर जाऊँगी । मृणाल का कौल झूठा नहीं होता ।'[7]

इन परिस्थितियों के बीच मृणाल बराबर आत्मपीड़ा का शिकार होती रहती है । वह इन दोनों में से किसी एक का चुनाव नहीं कर पाती । इस प्रयास में कई बार उसके दिमाग में आत्महत्या का विचार भी उत्पन्न होता है परन्तु वह उस ओर कदम नहीं बढ़ाती । अन्ततः उसे जबर्दस्ती पति के साथ ससुराल भेज दिया जाता है । मजबूरीवश मृणाल कुछ समय तक तो परिस्थितियों से समझौतावादी रुख अपनाती है परन्तु पति के उत्पीड़न से उसका धैर्य जवाब दे जाता है और वह पति से छुटकारा पाने के वशीभूत होकर एक नई युक्ति बना लेती है जो अधिक कारगर साबित हुई । वह अपना पूर्व प्रेम अपने पति से बता देती है । अन्ततः उसका पति उसे छोड़ देता है ।

मृणाल की एक खास प्रवृत्ति आदर्शवादिता की है । इसी के कारण मृणाल अपनी आयु से बड़े व्यक्ति के साथ विवाह होने के बावजूद भी पतिव्रता धर्म का पालन करना चाहती है । इसी के चलते वह पति के प्रति सच्ची बनी रहने के लिए अपने पूर्व प्रेम के बारे में पति को बता देती है । एक आदर्श पत्नी के बारे में मृणाल का कथन है कि - " व्याहता को पतिव्रता होना चाहिए । उसके लिए पहले उसे पति के प्रति सच्ची होना चाहिए । सच्ची बनकर ही समर्पित हुआ जा सकता है ।"[8]

लेकिन मृणाल की इस आदर्शवादिता का परिणाम उल्टा निकलता है । जिस दिन से मृणाल का पति इस रहस्य को जान जाता है, उसी दिन से वह मृणाल से किनारा काटने लगता है । अन्ततः वह मृणाल को घर से निकाल देता है । पति के इस व्यवहार के प्रति मृणाल में न तो उनके प्रति आक्रोश है और न ही स्वयं के प्रति अपराध बोध । उसके लिए पतिव्रता धर्म का अब एक नया रूप है जिसे वह स्वीकार भी करती है । साथ ही पुराने सतीत्व की परिभाषा उसे अर्थहीन और बकवास से कुछ अधिक नहीं लगती । वह पतिव्रता धर्म की नई व्याख्या इस रूप में करती है - "मैं स्त्री धर्म को पतिव्रता धर्म ही मानती हूँ । उसका स्वतंत्र धर्म मैं नहीं मानती हूँ । क्यों पतिव्रता को

यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता, तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे ? मुझे देखना भी नहीं चाहते, यह जानकर मैंने उसकी आंखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया । उन्होंने कहा - 'मैं तेरा पति नहीं हूँ ।' तब मैं किस अधिकार से अपने को उन पर डाले रहती ? पतिव्रता का यह धर्म नहीं है ।'[9]

इस प्रकार मृणाल अपने पति के मार्ग में बाधा नहीं बनना चाहती और स्वयं उसके मार्ग से हट कर अपना अलग रास्ता अपना लेती है । जो उस के लिए भविष्य में कष्टदायक, किन्तु स्वतंत्र व्यक्तित्व-निर्माण में सहायक होता है ।

मृणाल का अहं भाव उसे झुकने की अपेक्षा टूट जाने वाला फौलादी व्यक्तित्व प्रदान करता है । वह पति-गृह से निष्कासित होकर अपमान के घूंट पीने के लिए मैके नहीं जाती, बल्कि निराश्रित होकर एक कोयले वाले बनिये के संसर्ग में रहना पसंद करती है । मृणाल की खास विशेषता है कि वह जहाँ भी रहती है, व्यवस्थित रहती है और जिसका साथ देती है, उसे पूर्ण सच्चाई से खुद को समर्पित कर देती है । यह नारी की स्वाभाविक वृत्ति है कि वह सहज ही भावुक हो जाती है और हर किसी को सहज ही अपना मान बैठती है । इतना ही नहीं, वह उसके लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को भी तत्पर दिखाई पड़ती है, भले ही उसे जीवन में बार-बार धोखा खाना पड़े । मृणाल के भी ऐसा ही होता है । वह बनिये के साथ रहकर एक अभावग्रस्त जीवन जीने को तत्पर दीखती है । यद्यपि उसका भतीजा प्रमोद उसे ऐसा न करने के लिए कहता है । इस पर तर्क प्रस्तुत करते हुए मृणाल का कथन है कि --'उन्होंने मेरे लिए क्या नहीं त्यागा ? उनकी करुणा पर मैं बची हूँ । मैं मर सकती थी, लेकिन मैं नहीं मरी । मरने का अधर्म जानकर ही मैं मरने से बच गई । जिसके सहारे मैं उस मृत्यु के अधर्म से बची उन्हीं को छोड़ देने को मुझसे कहते हो ? मैं नहीं छोड़ सकती । पापिनी हो सकती हूँ, पर उसके ऊपर क्या बेहया भी बनूं ? क्यों मुझे तंग करते हो ?'[10]

यही नारी स्वभाव की दुर्बलता है जिसके कारण वह बार-बार ठगी जाकर भी नहीं संभल पाती है । उसके अन्दर दया और करुणा का अपार भण्डार रहता है जो नारी को बार-बार त्याग करने के लिए उकसाता रहता है । मृणाल भी स्वयं तो दु:ख भोग सकती है परन्तु दूसरे को दु:ख नहीं पहुंचाना चाहती है, क्योंकि उसे संवेदना मिली है । इसलिए वह संवेदना का प्रतिदान देना अपना धर्म समझती है । उसे अपने इस आचरण का परिणाम भी पता है कि एक दिन यह कोयले वाला उसे छोड़ कर चला जाएगा, फिर भी वह उसे दु:खी नहीं करना चाहती है --'तुम समझते हो यह आदमी जिसके साथ मैं रह रही हूँ, मुझे ज्यादा दिन रख सकेगा ? नहीं, मैं जानती हूँ एक दिन यह मुझे छोड़ कर चला जाएगा । तभी इस कोठरी से मेरे उठने का भी दिन होगा ।'[11]

इस विषम परिस्थितियों में भी इस सत्य को जानते हुए भी मृणाल को अपने स्वार्थ की चिन्ता तो नहीं परन्तु अपने प्रेमी के परिवार की विशेष चिन्ता है जैसा कि उसके कथन से स्पष्ट है --'जानती थी, इसलिए मैं उसे साथ ले आई । वह बेरुखी का भाव अब शुरू हो गया है । अब उसे चला जाना चाहिए। परिवार उसका वहाँ अकेला है । मुझे वह नहीं झेल सकता । मेरी कोशिश है कि वह मुझसे उकता जाय । अपनी अवस्था में जानती हूं, पेट में बालक है, लेकिन ऐसी अवस्था में भी स्वार्थ की बात सोचना ठीक नहीं है । मैं उसे उस के परिवार में लौटाकर ही मानूंगी ।'[12]

इस प्रकार इतनी अधिक आदर्शवादिता से पात्र की मनोवैज्ञानिक भावनाओं की प्रामाणिकता को ठेस पहुंचती है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने को धोखा देने वाले के प्रति इतना अधिकसहिष्णु और दयालु नहीं हो सकता जैसा कि मृणाल को लेखक ने चित्रित किया है । फिर भी इस मनोवैज्ञानिकता को ठेस पहुंचाने के पीछे लेखक का एक महत् उद्देश्य छिपा है । वह यह कि इसके माध्यम से लेखक मृणाल के चरित्र में अनेक दुर्बलताओं के होते हुए भी उसे पाठक

की व्यापक सहानुभूति का विषय बना सका । इसी बात को मंजुलता सिंह ने इस प्रकार व्यक्त किया - " `त्यागपत्र` की मृणाल उस मध्यवर्गीय नारी की सहिष्णुता, समर्पण और उत्सर्ग की महती कल्पना तो है ही, साथ ही नारी स्वतंत्रता आंदोलन के फलस्वरूप बढ़ती हुई स्वतंत्रता की मान्यताएँ विद्यमान हैं । पुरातन परंपरा के विश्वास और नवीनतम विचारों के संघर्ष में ही मृणाल का रूप कथाकार ने निर्मित किया है ।"[13]

जैनेन्द्र मृणाल के माध्यम से पुरुषों के स्वभाव पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि मन माफिक रहना जब मन चाहे त्याग देना, ये पुरुष का बुनियादी चरित्र है, जबकि संबंधों को संजोए रखना स्त्री का मूल स्वभाव है । जाहिर है कि संबंधों को निरंतरता प्रदान करने के लिए स्त्री को कई बार व्यक्तिगत जरूरतों की आहुति देनी पड़ती है, लेकिन ये उसे स्वीकार नहीं कि जिससे आज संबंध बने उसे कल विस्मृत कर दिया जाए । स्त्री इस विस्मृति के विरोध में खड़ी है ।

मृणाल के लिए स्त्री पुरुष की नैतिकता में अन्तर है । उसके नजरिये में दान स्त्री का धर्म है । वह अपना शरीर पराये पुरुष को सौंप सकती है, लेकिन उसके लिए उस समर्पण की कीमत वसूल करना असंभव होगा । यहां हमें स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्मित होता दिखाई पड़ता है परन्तु अगले ही क्षण हमारे इस विश्वास को चोट पहुंचती है, जब हम मृणाल का यह कथन सुनते हैं कि -"तन देने की जरूरत मैं समझ सकती हूँ । तन दे सकूंगी, शायद वह अनिवार्य हो । पर लेना कैसे ? दान स्त्री का धर्म है । नहीं तो उसका और क्या धर्म है ? उससे मन मांगा जाएगा, तन भी मांगा जाएगा । सती का आदर्श और क्या है ?"[14]

यहाँ मृणाल जिस `सती` शब्द के माध्यम से अपने व्यक्तित्व को संकेतित कर रही है, वह हमें सोचने पर विवश कर देता है कि पारम्परिक मर्यादा और नैतिकता के बने बनाए ढांचे को बराबर तोड़ने की कोशिश के बावजूद

मृणाल पुरातन मानसिक दासता से मुक्त नहीं हो सकी है बल्कि वह और अधिक उन्हीं में जकड़ गयी है ।

मृणाल स्वाभिमानी है । वह लाख कष्ट सहकर टूट सकती है परन्तु झुकना उसके चरित्र का पहलू नहीं है । वह लोगों को निःस्वार्थ भाव से अपनी सेवा समर्पित करती है परन्तु बदले में कुछ भी मांग नहीं करती है । यही भारतीय नारी का आदर्श है, जो मृणाल के माध्यम से उभर कर सामने आया है । मृणाल को यद्यपि पता है कि यह रूप का लोभी कोयला वाला बनिया भी ज्यादा दिन तक उसका साथ नहीं देगा, फिर भी वह उसी निःस्वार्थ भाव से उसकी सेवा में लगी है । कोयले वाले के साथ रहते हुए मृणाल गर्भवती हो जाती है परन्तु इस असहाय स्थिति में उसकी सहायता करने के बजाय कोयले वाला अपनी असमर्थता का परिचय देता हुआ उसे मार-पीट कर अपने घर भाग खड़ा होता है । फिर भी मृणाल हार नहीं मानती । वह अपनी किस्मत को बार-बार आजमाती है, पर दुर्भाग्य ने उसका साथ नहीं छोड़ा । वह अस्पताल में पहुंचती है और जहां उसके बच्ची पैदा होती है, वह उसी अस्पताल में नर्स बनने का प्रयास करती है । परन्तु असफल होकर एक दूसरा रास्ता तय करती है ।

बच्ची के मर जाने से एक संभ्रांत डाक्टर के बच्चों को ट्यूशन पढ़ाकर वह अपना जीवन निर्वाह करने लगती है परन्तु विडम्बना यह कि उसी परिवार में प्रमोद की शादी तय होती है । इसीलिए मृणाल प्रमोद का वैवाहिक संबंध बरकरार रखने के लिए उसकी प्रतिष्ठा का ध्यान रखते हुए स्वयं आश्रय छोड़ कर वहां से चली जाती है । इस प्रकार आत्मोत्सर्ग की भावना से वह स्वयं तो टूट जाती है परन्तु किसी और को आंच तक आने नहीं देती । यही भारतीय नारी का आदर्श है । वह खुद की चिंता न करके दूसरे की फिक्र अधिक रखती है । परन्तु मृणाल आदर्शों के इस पहलू से अपने को बांधने और बार-बार टूट जाने की प्रक्रिया में एक ऐसे स्थान पर पहुंच जाती है, जहाँ दुर्जनता ही सबसे

बड़ा मानव मूल्य बन जाती है । इसका वर्णन वह स्वयं अपने शब्दों में करती है - 'यहां गन्दगी और जड़ता है । मैं उनमें सांस लेकर रह लेती हूँ, क्योंकि आदी हो गई हूँ । हो सकता है कि मन की उच्च और कोमल वृत्तियां ही मेरी मन्द पड़ गई हों।'[15]

इन परिस्थितियों में पड़े रहकर भी उसके स्वाभिमान ने उसका साथ न छोड़ा । इस गर्त से मृणाल का भतीजा प्रमोद उसे उबारना चाहता है परन्तु मृणाल के लिए अब किसी की सहानुभूति और अपनत्व की जरूरत नहीं । वह इन सभी मानवीय मूल्यों को न जाने कब का भूल चुकी है । वह अब किसी की दया की भूखी नहीं है । वह अपना रास्ता खुद तलाश करेगी । मृणाल को सिर्फ अपनी चिंता नहीं है, बल्कि उसे समाज में रहने वाले ऐसे अन्य लोगों की चिंता है जो उसके ही जैसे इस नरक कुंड में रह रहे हैं । उसे लगता है कि यदि एक मृणाल को इस नरक से निकाल भी लिया जाए तो बाकी समाज पर क्या फर्क पड़ता है, जहाँ लाखों-लाख मृणाल अभी भी पुरुष वर्चस्व में घृणित ज़िन्दगी जीने के लिए विवश हैं । इसी लिए मृणाल उस तथाकथित समाज में जाने को इच्छुक नहीं है जहाँ उसके जैसी असभ्य हतभाग्या के लिए दो बूंदें आंसू न हों । अत: वह इसी घृणित परन्तु ऊपर से नीचे तक सच्चे और नग्न यथार्थ वाले समाज में रहना अधिक पसंद करती है । जहाँ उसे यथार्थ की सच्चाई से एक प्रकार की जीवनी शक्ति मिलती रहती है । उसी के शब्दों में -'सहायता मुझे इसलिए चाहिए कि मेरा मन पक्का होतारहे कि कोई मुझे कुचले, तो भी मैं कुचली न जाऊँ और इतनी जीवित रहूँ कि उसके पाप के बोझ को भी ले लूँ और सब के लिए क्षमा की प्रार्थना करूँ । प्रतिष्ठा मुझे क्यों चाहिए, मुझे तो जो मिलता है, उसी के भीतर सांत्वना पाने की शक्ति चाहिए ।'[16] इससे स्पष्ट है कि मृणाल अब अपने स्वाभिमान को ताक पर रख कर सहायता के लिए किसी के सामने गिड़गिड़ाएगी नहीं । फिर भी यदि कोई उसकी सहायता ही करना चाहता है तो वह उसे अपने अनुसार ही ढाल कर स्वीकार करेगी न कि खुद को उसके अनुसार ढाल कर । अत: उसका भतीजा उसे वास्तव

में उबारना चाहता है तो वह ऐसी सहायता दे जिससे उसके साथ-साथ अन्य उस जैसे सामाजिक उत्पीड़न के शिकार लोगों का भी भला हो सके । सम्पत्ति के दान का यह प्रस्ताव प्रमोद द्वारा स्वीकृत नहीं हो पाता है । इसके द्वारा मृणाल सिर्फ उस भ्रम को तोड़ना चाहती थी जो उसके मन में भतीजे के प्रति उत्कट लगाव के रूप में था । इस प्रकार द्वन्द्व , पीड़ा और सामाजिक तिरस्कार के साथ इसी गर्त में मृणाल की ज़िन्दगी का अंत होता है ।

'त्यागपत्र' में घटनाओं को प्रभावित करने में प्रमोद की माँ की भी महत्वपूर्ण भूमिका है । इस पात्र की सृष्टि जैनेन्द्र ने मृणाल के विद्रोह को अधिक मुखर करने के लिए की क्योंकि यदि प्रमोद की माँ मृणाल के प्रेम और स्वतन्त्रता का इतना तीव्र विरोध न करती तो मृणाल के जीवन में यह मोड़ न आता । यह चरित्र रूढ़िवादी और कठोर ग्रामीण महिला का प्रतिनिधित्व करता है, जो अपनी ननद को प्यार देने से अधिक अनुशासन में रखना पसन्द करती हैं । जैसा कि प्रमोद का कथन है --

> 'पिता का स्नेह बिगाड़ न दे, इस बात का मेरी माता को खास ख्याल रहता था । वह अपने अनुशासन में सावधान थी । मेरी बुआ को प्रेम करती थीं, यह तो किसी हालत में नहीं कहा जा सकता । पर आर्य गृहिणी का जो उनके मन में आदर्श था, मेरी बुआ को वे ठीक उसी के अनुरूप ढालना चाहती थीं ।'[17]

प्रमोद की माँ का यह चरित्र भाभी के रिश्ते का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है । प्रत्यक्ष रूप से तो देखने में लगता है कि मृणाल के ऊपर वे इतना जो अत्याचार कर रही हैं, उसका कारण सामाजिक दबाव है परन्तु परोक्ष रूप से उन्हें मृणाल की शिक्षा, स्वतन्त्रता और सुन्दरता आदि से कहीं न कहीं ईर्ष्या अवश्य है जो एक नारी का प्रधान गुण है । प्रमोद की माँ जितनी कठोर हैं, उतनी ही कोमल और भावुक भी है । उन्होंने मृणाल की मर्जी के खिलाफ उसका विवाह अधेड़ व्यक्ति से कर दिया और वे उसकी इच्छाओं को दबा कर

बलपूर्वक ससुराल भेजती हैं परन्तु मृणाल द्वारा पैर छूने पर शीघ्र ही द्रवित हो जाती हैं - `माँ ने द्रवित भाव से उन्हें अपने कण्ठ से लगाकर कहा -- `मिनी, मैं तुझे जल्दी बुलाऊँगी । वहां अपनी गिरस्ती अच्छी तरह संभालना और पति को सुखी करना, मिनी ।`[18]

जैनेन्द्र यहाँ भावुकता के क्षण में भी नारी-मनोविज्ञान-चित्रण में चूकते नहीं, बल्कि उन्होंने मृणाल की भाभी द्वारा वह शिक्षा भी दिलवा दी जो कि एक माँ ससुराल जाते समय अपनी बेटी को देती है । प्रमोद की माँ मृणाल के प्रति अपनी दो भूमिकाओं - माँ और संरक्षिका में अधिक सफल रही परन्तु इसके चलते वे नारी विषयक गुण कोमलता और दयालुता से रहित हो गयी, जिसका प्रमाण मृणाल के ऊपर किए गए अत्याचार हैं । इसलिए प्रमोद की माँ का चरित्र नारी मनोविज्ञान के पूरक के रूप में उभर कर सामने आया । जिन नारी विषयक विशेषताओं की कमी मृणाल के चरित्र में थी, उनकी पूर्ति जैनेन्द्र ने प्रमोद की माँ के चरित्रांकन द्वारा की, जैसे कठोरता, रूढ़िवादिता, ईर्ष्या, जलन, परंपरानुगामिनी आदि गुण, जिनका मृणाल में आभास था, वे सभी प्रमोद की माँ में मूर्तिमान हुए हैं ।

0

---

1. जैनेन्द्र कुमार -`त्यागपत्र`, पृ० 10, 11
2. वही, पृ० 13, 14
3. डा० विमल सहस्रबुद्धे -`हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण`, पृ० 231
4. जैनेन्द्र कुमार -`त्यागपत्र`, पृ० 14

5. जैनेन्द्र कुमार -`त्यागपत्र`, पृ0 62
6. वही, पृ0 21, 22
7. वही, पृ0 22
8. वही, पृ0 54
9. वही, पृ0 54
10. वही, पृ0 49
11. वही, पृ0 53
12. वही, पृ0 57, 58
13. मंजुलता सिंह -`हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग `, पृ0 191
14. जैनेन्द्र कुमार -`त्यागपत्र`, पृ0 53
15. वही, पृ0 79
16. वही, पृ0 63
17. वही, पृ0 10
18. वही, पृ0 37

0

छठा अध्याय

उपसंहार

उपसंहार

नारी जीवन की समस्याएँ कोई ऐसी घटनाएँ नहीं हैं, जो एक झटके के साथ घटित होकर सारे मानवीय समाज को विषाक्तता से भर देती हैं, बल्कि इनका यह सुसंगठित रूप शताब्दियों की पुरुषवादी व्यवस्था से निर्मित होता चला आ रहा है। नारी जीवन की ये समस्याएँ समाज के बदलते हुए रूप के साथ-साथ नया-नया आकार ग्रहण करती जा रही हैं। प्रेमचन्द के लिए जो नारी समस्या सामाजिक थी, वहीं जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय के लिए सामाजिक से अधिक मनोवैज्ञानिक है। इन उपन्यासकारों ने स्त्री को प्रेम और स्वतन्त्रता के दो प्रश्नों के भीतर परखने की कोशिश की।

जैनेन्द्र ने नारी जीवन की समस्याओं को अन्य उपन्यासों में भी उठाने का प्रयास किया है। इस शोध प्रबन्ध में इन उपन्यासों के परिचयात्मक विवरण के साथ-साथ उन मुख्य बिन्दुओं को भी रेखांकित करने का प्रयास किया गया जो नारी जीवन को एक अलग दशा और दिशा प्रदान करते हैं। नारी जीवन की ये समस्याएँ मुख्यत: प्रेम, विवाह और नारी मुक्ति के रूप में कुछ हेर-फेर के साथ उनके अन्य उपन्यासों जैसे `परख`, `सुनीता`, `त्यागपत्र`, `कल्याणी`, `सुखदा`, `विवर्त`, `व्यतीत`, `जयवर्धन`, `मुक्तिबोध`, `अनन्तर` और `अनाम स्वामी` आदि में भी चित्रित हैं।

जैनेन्द्र ने आलोच्य उपन्यास `त्यागपत्र` में न तो पूर्णत: मनोवैज्ञानिक और न ही केवल सामाजिक आधार पर नारी-जीवन को जाँचने-परखने का काम किया। वे बीच का और यथार्थवादी रास्ता तलाशते हैं। परन्तु उनके इस यथार्थ चित्रण में कहीं-कहीं आदर्श हावी हो गया, जिसके चलते वे जिस नारी स्वातंत्र्य को लेकर चलते हैं, उसे पूर्णता तक नहीं पहुँचा पाते हैं।

नारी मुक्ति को जैनेन्द्र व्यक्तिगत और सामाजिक दो रूपों में देखने

का प्रयास करते हैं । व्यक्तिगत मुक्ति में मृणाल जहाँ सामाजिक और पारिवारिक बन्धनों को तोड़कर अपने लिए अलग रास्ता निकालता है, वहीं सामाजिक मुक्ति के लिए परंपराओं और झूठी मर्यादाओं को अस्वीकार करके उनके विरुद्ध संघर्ष करता है । प्रारम्भ में मृणाल का मन परंपरा बंधन और आदर्श के भार से दबा रहता है, परन्तु ज्यों-ज्यों यथार्थसे उसका सामना हो जाता है, त्यों त्यों उसमें अस्वीकार की प्रवृत्ति अधिक प्रबल होती जाती है । जैनेन्द्र मृणाल के सम्बन्ध में प्रेम का सवाल तो उठाते हैं परन्तु वे उसे प्रेमिका की भूमिका नहीं दे सके । जैनेन्द्र यहाँ वैवाहिक बन्धन को नकारते तो हैं परन्तु इसका विकल्प उनके पास नहीं है । मृणाल द्वारा पहले पति को छोड़ना और फिर कोयले वाले के साथ पुनः वैवाहिक सूत्र में बंध जाना, साथ ही पतिव्रता धर्म का एक नया आदर्श रूप प्रस्तुत करना जैनेन्द्र के द्वारा प्रस्तुत वैवाहिक स्वातंत्र्य की अस्पष्ट तस्वीर प्रस्तुत करता है । जैनेन्द्र के लिए विवाह सामाजिक बन्धन नहीं बल्कि प्रेम और मुक्ति का प्रश्न है । मृणाल का प्रेम इन दोनों के बीच उलझा और अधूरा प्रेम है । अतः वह न तो पूर्णतः पत्नी ही बन सकी और न प्रेमिका ही ।

जैनेन्द्र के उपन्यासों में उनके पात्र अन्तर्द्वन्द्व की विभिन्न स्थितियों में जीवन जीने के लिए अभिशप्त दिखते हैं । यही अन्तर्द्वन्द्व 'त्यागपत्र' उपन्यास के विभिन्न पात्रों पर हावी रहा । मृणाल का अन्तर्द्वन्द्व आदर्श और यथार्थ का है, विवाह और प्रेम का है, स्वतंत्रता और बन्धन का है, परम्परा और प्रगतिशीलता का है, व्यक्ति और समाज का है, पुरुष और नारी-अस्मिता का है । प्रारम्भ में उस पर आदर्श हावी रहा परन्तु अन्ततः परिस्थितिवश उसे यथार्थ स्वीकारना पड़ा । प्रमोद का अन्तर्द्वन्द्व माँ और बुआ के रिश्ते एवं मर्यादा और वास्तविकता का है । मृणाल के भाई का अन्तर्द्वन्द्व बहन के प्रति प्रेम और सामाजिक बन्धन का है । प्रमोद की मां का अन्तर्द्वन्द्व नारी सुलभ ईर्ष्या और संरक्षक भाव का है । इन पात्रों के साथ-साथ स्वयं जैनेन्द्र का भी अन्तर्द्वन्द्व उभर आता है । वे विवाह और प्रेम के बीच उलझे दिखाई पड़ते हैं । अन्ततः दोनों में से वे किसी एक को पूर्णता तक नहीं पहुँचा पाते हैं

'त्यागपत्र' में नारी शोषण के दो रूप उभर कर सामने आते हैं। एक पुरुषवादी व्यवस्था द्वारा निरन्तर किया जाने वाला शोषण और दूसरा मर्यादा और परम्परा के भार से आक्रान्त नारी व्यक्तित्व द्वारा स्वयं पर किया जाने वाला शोषण। मृणाल इन दोनों की किसी न किसी रूप में शिकार होती है। जैनेन्द्र नारी को इन दोनों शोषणों से मुक्ति प्रदान करने के लिए उसमें प्रगतिशीलता और क्रान्तिकारिता आदि गुणों का समावेश चाहते हैं, जिसका प्रतिनिधित्व 'त्यागपत्र' की मृणाल करती है। परन्तु सामाजिक और राजनीतिक आधार प्रदान कर देने मात्र से नारी शोषण समाप्त नहीं हो जाता है। इसके लिए समाज में जागरूकता लाना आवश्यक है। साथ ही नारी को पूर्णता प्रदान करने के लिए उसे एक सशक्त आर्थिक आधार भी प्रदान करना उतना ही ज़रूरी हो जाता है। परन्तु इस प्रक्रिया में जैनेन्द्र चूक से गए हैं। उन्होंने मृणाल को राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में स्वतन्त्र तो कर दिया किन्तु आर्थिक क्षेत्र में कोई विकल्प न सुझा पाने की वजह से मृणाल एक पुरुष के शिकंजे से निकल कर उसी जैसे अन्य पुरुषवादी शोषण का शिकार हो जाती है। अतः मृणाल को पूर्ण स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता है। यही बिन्दु 'त्यागपत्र' उपन्यास का सबसे कमजोर पक्ष है, जिस पर उंगली रखकर जैनेन्द्र की सम्पूर्ण नारी स्वतन्त्रता को खोखली साबित किया जा सकता है।

नारी जागरण का जो रूप 'त्यागपत्र' उपन्यास में दिखाई पड़ता है, वह अपने युग का तो प्रतिनिधित्व करता ही है परन्तु उससे आगे बढ़कर भी भविष्य की ओर संकेत करता है। 'त्यागपत्र' का यह नारी जागरण, जागरण से अधिक क्रान्तिकारिता या विद्रोह जैसा लगता है। मृणाल द्वारा सम्पूर्ण व्यवस्था और सामाजिक बन्धनों को जिस ढंग से चुनौती दी जाती है और जिस ढंग से वह अपने स्वतन्त्र अस्तित्व का प्रदर्शक करती है, उसमें जागरण जैसी क्रमिकता कम परन्तु क्रान्ति जैसा विस्फोट अधिक दीखता है।

'त्यागपत्र' में नारी मनोविज्ञान को जैनेन्द्र ने प्रत्येक कोण से देखने का प्रयत्न किया है। बाल्यावस्था से लेकर युवावस्था तक नारी मनोविज्ञान के बीच आने वाले बदलाव और उनके द्वारा नारी जीवन में होने वाली हलचलों का उतार-चढ़ाव इनके पात्रों में देखा जा सकता है। इन्होंने ने अन्तर्मन की इन हलचलों को बाह्य आकार देने के लिए प्राकृतिक उपादानों का भी आवश्यकता अनुसार उपयोग किया है। खास कर मृणाल के मन की उन्मुक्तता को प्रदर्शित करने के लिए चिड़ियों की मुक्त नभ में उड़ान को आधार बनाया गया। यौनावस्था के आन्तरिक आवेग और उल्लास को वे पात्रों के बाह्य हाव-भाव से व्यक्त करते हैं। उनकी भाषा संकेतात्मक ही सही परन्तु वह स्थिति को पूर्ण स्पष्ट कर देती है। प्रेम के क्षेत्र में मनोविज्ञान का प्रयोग तो जैनेन्द्र अवश्य करते हैं परन्तु मृणाल विवाहोपरान्त जिस झटके के साथ अपने पूर्व प्रेमी का साथ छोड़ देती है, क्या वह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधिक उपयुक्त है ? इस प्रसंग में जैनेन्द्र के मनोविज्ञान से ज्यादा उनका आदर्शवाद काम कर रहा था।

जैनेन्द्र ने मृणाल की भाभी का जो मनोवैज्ञानिक चित्र खींचा, वह उस परिस्थिति के अधिक अनुकूल है, क्योंकि भाभी का ननद के साथ प्रायः जैसा सम्बन्ध होता है, उसका स्वाभाविक रूप मृणाल की भाभी में दिखाई पड़ता है। उस में संरक्षक भाव से अधिक मृणाल के प्रति ईर्ष्या, घृणा और उपेक्षा भाव विद्यमान है।

इस प्रकार जैनेन्द्र का यह उपन्यास नारी जीवन की समस्याओं को उभारने, उन्हें एक आकार देने, उन समस्याओं को हल करने, नारी शोषण का पर्दाफाश करने, परिवार, समाज और व्यक्तिगत जीवन में चारों तरफ पलने वाले अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करने, नारी जागरण को बढ़ावा देने और सबसे अधिक नारी मनोविज्ञान को मूर्त आकार देने में अपने समय और देश-काल की सीमा के बावजूद सफल रहा।

o

परिशिष्ट

1 - आधार ग्रन्थ

1.	जैनेन्द्र कुमार	`परख`	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई सन् 1929
2.	,, ,,	`सुनीता`	साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1934
3.	,, ,,	`विवर्त`	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली सन् 1973
4.	,, ,,	`व्यतीत`	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1973
5.	,, ,,	`जयवर्धन`	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1973
6.	,, ,,	`सुखदा`	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1974
7.	,, ,,	`अनाम स्वामी`	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली सन् 1974
8.	,, ,,	`अनन्तर`	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1974
9.	,, ,,	`कल्याणी`	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1990
10.	,, ,,	`मुक्तिबोध`	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली सन् 1990
11.	,, ,,	`त्यागपत्र`	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1992

2 - सहायक ग्रन्थ

1. आशा रानी व्होरा - `नारी शोषण : आइने और आयाम` नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, सन् 1982
2. अमर सिंह लोधा - `हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना, अमर प्रकाशन, अहमदाबाद, सन् 1981
3. अमर प्रसाद वार्ष्णेय - `हिन्दी उपन्यासों का वर्गगत अध्ययन`, साहित्य निलय प्रकाशन, कानपुर, सन् 1994
4. अमल राय, मोहित भट्टाचार्य - `राजनीतिक सिद्धांत : विचार एवं संस्थाएँ` (हिन्दी अनुवाद) जवाहर पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, सन् 1996
5. इन्द्रनाथ मदान - `हिन्दी उपन्यास : एक नई दृष्टि`, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1975
6. गीतांजलि श्री - `माई `, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1993
7. परमानंद श्रीवास्तव - `जैनेन्द्र के उपन्यास`, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1993
8. परमानंद श्रीवास्तव - `जैनेन्द्र और उनके उपन्यास`, सरस्वती प्रिंटर्स, दिल्ली, सन् 1976
9. प्रेमचंद - `गोदान`, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1995
10. प्रभा खेतान - `छिन्नमस्ता`, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1993
11. बिपिन चन्द्र - `भारत का स्वतंत्रता संग्राम`, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, सन् 1991
12. बी. एल. ग्रोवर - `आधुनिक भारत का इतिहास`, एस. चंद एण्ड कंपनी लि०, रामनगर, दिल्ली, सन् 199

13. बलराज सिंह राणा - 'उपन्यासकार जैनेन्द्र के पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन', संजय प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1978

14. मंजुलता सिंह - 'हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग', आर्य बुक डिपो, दिल्ली, सन् 1971

15. लक्ष्मीनारायण नन्दवाना - 'जैनेन्द्र : व्यक्तित्व : कृतित्व : पुनर्मूल्यांकन', राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, सन् 1989

16. विजय कुलश्रेष्ठ - 'जैनेन्द्र : उपन्यास और कला', पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सन् 1978

17. बिन्दु अग्रवाल - 'हिन्दी उपन्यास में नारी-चित्रण', ओमप्रकाश राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1968

18. विमल सहस्रबुद्धे - 'हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण', पुस्तक संस्थान, कानपुर, सन् 1974

19. सीमोन द बोउवार - 'द सेकेंड सेक्स' (हिन्दी अनुवाद) 'स्त्री : उपेक्षिता', प्रभा खेतान, सरस्वती विहार प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1994

20. सावित्री मठपाल - 'जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी पात्र', मंगल प्रकाशन, जयपुर, सन् 1986

21. स्वर्णकान्ता तलवार - 'हिन्दी उपन्यास और नारी समस्याएं' जय भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1992

पत्रिकाएं

इतिहास-बोध - अंक 21, जनवरी-मार्च 1996

हमदलित - अगस्त, 1996

000